Created by Universal Document Converter

लेखक द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य

Created by Universal Document Converter

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 42वाँ पुष्प

श्री राम-नन्दिनी ग्रंथमाला का 14वाँ पुष्प

पाथेय

(मध्यान्तर भाग-2)

लेखक :

राजकुमार, द्रोणगिरि

प्रकाशक :

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)

मो. 91 9414103492

Created by Universal Document Converter

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
(30 सितम्बर, 2024)

प्राप्ति स्थान :
- ❖ शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.)
- ❖ 18, आदिनाथ कॉलोनी, केशव नगर, उदयपुर (राज.), मो. 91-9414103492
- ❖ सर्वार्थसिद्धि, भोपाल (म.प्र.) मो. 7415921008

साहित्य प्रकाशन सहयोग राशि : 30/-

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रस्तुत प्रकाशन में प्राप्त सहयोग

1.	डॉ. ममता जैन, अगम-निष्ठा, विपाशा-दीपेश जैन, उदयपुर (राज.)	15000/-
2.	श्रीमती नंदनीबाई जैन, द्रोणगिरि	5000/-
3.	श्रीमती मानवती अशोक जैन, इन्दौर	1000/-
4.	श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	1000/-
5.	श्री नेमीचंद चंपालाल भोरावत चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1000/-

Created by Universal Document Converter

प्रकाशकीय

'**समर्पण**' का नये लेखकों के विचारों को आप सब तक पहुँचाना ही उद्देश्य है। अभी तक हमारे द्वारा 41 पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं, जिन्हें पाठकों ने हृदय से सराहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमें पुस्तक प्रकाशन के पूर्व ही अर्थ सहयोग प्राप्त हो जाता है। अतः बाद में हम 'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ' की भावना से पाठक को साहित्य उपलब्ध कराते हैं, इसमें जो राशि आती है, उसे अन्य प्रकाशन में आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

'**समर्पण**' का प्रस्तुत प्रकाशन राजकुमार, द्रोणगिरि द्वारा लिखित **पाथेय (मध्यान्तर भाग-2)** है। पुस्तक में काल्पनिक पात्रों के माध्यम से संस्था संचालकों, समाज, युवा वर्ग की मानसिकता को प्रगट करते हुए जिनवचनामृतरूपी पाथेय द्वारा इस जीवन यात्रा को 'विकार विजय यात्रा' के रूप में परिवर्तित किया जा सके, एतदर्थ धर्म के दशलक्षणों एवं अन्य सिद्धान्तों को सरल भाषा में पिरोया गया है, जो नवीन पाठकों के लिए निश्चित ही उपयोगी रहेगा।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर एवं अर्थ सहयोग हेतु **श्रीराम-नंदनी ग्रंथमाला** के संचालकों व अन्य साधर्मियों का भी आभार।

लेखन/मुद्रण में किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया हमें अवगत करायें, जिससे कि भविष्य में ध्यान रखा जा सके।

अब आपके हाथों में है - '**पाथेय**'

निवेदक - **समर्पण परिवार**

मो. 9414103492

Created by Universal Document Converter

मन की बात

60 वर्ष पूर्व जब द्रोणगिरि में जन्म हुआ तब परिवार में कल्पना भी नहीं थी कि मुझे इस प्रकार के संयोग प्राप्त होंगे। महान पुण्य के उदय से 1982 में आदरणीय ब्रह्मचारी नित्यानंदजी की प्रेरणा, माता-पिता के आशीर्वाद से आदरणीय दादा द्वय एवं विद्वज्जनों की छत्रछाया में पण्डित टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर में प्रविष्ट होना इस लघु जीवन का यू-टर्न है, जहाँ से सोचने, करने की दिशा ही बदल गई जो अब दशा बदलने की ओर निरन्तर अग्रसर है।

1990 में राजकीय अध्यापक बना तो इसी वर्ष गृहस्थ जीवन भी प्रारम्भ हुआ। सहधर्मिणी डॉक्टर ममता जैन ने संसाधनों की कमी के मध्य भी अपने परिश्रम/लगन से एक ओर जहाँ स्वाध्याय करते हुए अपने आपको धर्ममार्ग में आगे बढ़ाया तो दूसरी ओर समाज में अपने वात्सल्य और प्रसन्नता के आधार पर अपना स्वयं का स्थान बनाया, साथ ही अध्यापन कार्य करते हुए परिवार को आर्थिक संबल भी प्रदान किया।

1992-96 तक हमें आदरणीय बाबूजी के पास कोटा रहने का शुभ अवसर भी प्राप्त हुआ जहाँ उनका वात्सल्य व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। हम दोनों ने वहाँ के साधर्मियों के साथ मिलकर अनेक गतिविधियाँ संचालित कीं।

1997 में उदयपुर आने पर तो हमें अपनी सक्रियता के साथ अनेक काम करने का अवसर प्राप्त हुआ।

2002 में बांसवाड़ा पहुँचना और ज्ञायक परिवार का स्नेह प्राप्त होना तो हमारे परिवार के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि ही है, साथ ही तत्त्व-प्रचार के लिए भी हमें देश के दूसरे शास्त्री महाविद्यालय आचार्य आकलंक देव जैन न्याय महाविद्यालय ध्रुवधाम जैसी संस्था

Created by Universal Document Converter

को संस्थापित होने में हमें सहयोग करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

ढाई द्वीप इन्दौर के स्वप्नद्रष्टा आदरणीय मुकेशजी भाई साहब सन् 2010-12 में जब-जब भी मिले तब-तब उन्होंने ममता से इन्दौर में बालिका विद्यालय प्रारम्भ करने हेतु स्नेह भरा आग्रह किया, परन्तु कार्य उदयपुर में होना था इसलिए देश के दूसरे कन्या विद्यालय एवं प्रथम महाविद्यालय शाश्वतधाम की स्थापना में भी निमित्त बनने का अवसर ममता के माध्यम से मुझे भी प्राप्त हुआ।

इस तरह सुदीर्घकालीन यात्रा है, जो देश के दूसरे बालिका शास्त्री महाविद्यालय 'सर्वार्थसिद्धि' भोपाल तक पहुँच चुकी है, बस अब एक कदम और आगे बढ़ाना है।

प्रतिभाशाली सहस्राधिक स्नातकों के बीच तीन शास्त्री महा-विद्यालयों की स्थापना कराने एवं योग्य काल तक संचालित करने का महामंगलमय अवसर केवल मुझे और मेरे परिवार को प्राप्त हुआ जिससे हम अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी करने वाले छात्रों के लिए मुमुक्षु समाज द्वारा संचालित एकमात्र केन्द्र प्रयास जयपुर, भोपाल, ग्वालियर, उदयपुर में प्रारम्भ कराने का सुयोग भी हमें ही प्राप्त हुआ।

अभी भी कुछ और करने की भावना है इसीलिए जिनवचनामृत रूपी पाथेय लेकर आगे बढ़ रहे हैं। जो सर्वज्ञ के ज्ञान में आया होगा, वह, वहाँ, उस तरह कार्य सम्पन्न होगा हम सभी देखेंगे।

सभी कार्यों में हमारे परिवार के अतिरिक्त समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों का पूरा सहयोग प्राप्त होता है।

इस जीवन यात्रा में खट्टे-मीठे बहुत अनुभव रहे हैं। जो नहीं होना चाहिए ऐसा मन कहता है, जबकि ज्ञान कहता है कि जो होना था वही हुआ है, जो होना होगा वही होगा उसे कौन बदल कर सकता है।

Created by Universal Document Converter

30 सितम्बर को राजकीय सेवा से निवृत्त हो रहा हूँ। मुझे कुछ संख्याओं या प्रसंग से प्रेम रहता है कि इस समय या इस तारीख को कुछ ऐसा किया जाना चाहिए। लगभग दो माह से मन में चल रहा था कि इस अवसर पर कुछ विशेष लिखा जाए। पर क्या ? किस रूप में किया जाए समझ नहीं आ रहा था। मैं दसलक्षण पर्व में छिंदवाड़ा जाने की तैयारी कर रहा था कि जाने के शायद एक दिन पहले ही ममता ने कहा कि आप तो कुछ जल्दी नया लिख दीजिए, अपने खट्टे-मीठे अनुभवों को जिस तरह प्रकट किया जा सकता है और लोगों को प्रेरित किया जा सकता है ऐसा कुछ करने के लिए आप लिखिए, उसी को हम प्रकाशित करके 30 सितम्बर को लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं।

इसी के साथ मेरे मन में यह पाथेय (मध्यानन्तर भाग-दो) लिखने का भाव प्रबल हो गया। ट्रेन में ही कुछ बिन्दु बने। छिंदवाड़ा में लिखना प्रारम्भ किया जो उदयपुर में आकर पूर्ण हो रहा है।

निश्चित ही मैं अधिक कल्पनाशील नहीं हूँ। मैं अपने भोगे यथार्थ एवं अपने द्वारा ही कल्पित आदर्श के आसपास ही घूमता रहता हूँ, उसे ही गद्य-पद्य में काल्पनिक/वास्तविक पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता हूँ। भावनाओं में सिद्धान्त तिरोहित न हो जाए और सिद्धान्तों की ऊर्ध्वता में भावनाएँ न मर जाएँ इनका सुमेल बनाए रखने के फेर में जो कुछ भी जैसा भी लिखा जाता है, लिखा जा सकता है वह आपके दृष्टिगोचर होने के लिए व्हाट्सएप अथवा पुस्तकों के माध्यम से पहुँच जाता है।

इन थोड़े से ही दिनों में जो कुछ भी कल्पना संभव हो सकी वह लिखा है और आप तक पहुँचा रहे हैं। अन्तिम लेख में आदरणीय बड़े पण्डितजी साहब की सामग्री का उपयोग किया है, अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। कोई सैद्धान्तिक त्रुटि नजर में आए तो मुझे सूचित करके अनुगृहीत कीजिएगा।

20 सितंबर 2024 **- राजकुमार शास्त्री, मो. 9414103492**

Created by Universal Document Converter

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट	**स्थापना तिथि** - 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल

संरक्षक : 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 3. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 4. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **महामंत्री** - डॉ. महेश जैन भोपाल, **मंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया मंगलायतन, डॉ. ममता जैन उदयपुर, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, रतनचन्द शास्त्री भोपाल, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा

उद्देश्य :

1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना।
2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना।
3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना।

Created by Universal Document Converter

4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना।

5. शिक्षा व चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक मार्गदर्शन, सहयोग एवं कार्य करना।

गतिविधि :

1. साहित्य प्रकाशन - अभी तक 37 पुस्तकों का प्रकाशन।

2. संस्कार सुधा मासिक पत्रिका का प्रकाशन।

3. सुखायतन - सुखार्थी साधर्मियों के लिए द्रोणगिरि में निःशुल्क-सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था।

4. 'प्रयास' - जैन समाज के युवा वर्ग को धार्मिक संस्कारों के साथ प्रशासनिक/सी.ए./नीट/आई.आई.टी. इत्यादि की तैयारी करने हेतु व्यवस्था।

5. साधर्मी वात्सल्य योजना - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

6. धरोहर - नैतिक/धार्मिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार हेतु नई शिक्षा नीति के अनुसार धरोहर पुस्तकों का प्रकाशन।

7. सर्वार्थसिद्धि - भोपाल में बालिकाओं को शास्त्री करने वाले महाविद्यालय का 2024 में शुभारंभ।

आप अपनी सहयोग राशि **'समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट'** के नाम से, पंजाब नेशनल बैंक, पंचशील मार्ग, उदयपुर के खाता क्रमांक 04 58000100404840 में जमा करा सकते हैं।
IFSC Code - PUNB 0045800

Created by Universal Document Converter

1

युवराज की जीवन यात्रा के साठ बसन्त पूर्ण होने वाले हैं, अब तो 'बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी छिन-छिन जाय' के चिन्तन के साथ वर्तमान की ही नहीं भविष्य कालीन जीवन यात्रा के लिए पाथेय (मार्ग में ले जाने वाला नाश्ता) तैयार करने की भावना प्रबल होती जा रही है, क्योंकि पाथेय साथ हो तो पथ कितना भी लम्बा हो, आसानी से व्यतीत किया जा सकता है और बिना पाथेय के छोटा रास्ता भी लम्बा दिखने लगता है।

मानव जीवन की विडम्बना है कि लौकिक यात्रा के लिए पाथेय का प्रबन्ध किए बिना कदम बाहर नहीं निकलते हैं या तो साथ लेकर चलते हैं या मार्ग में कहाँ उपलब्ध होगा यह सुनिश्चित कर लेते हैं; परन्तु लोकोत्तर जीवन यात्रा हेतु पाथेय तैयार करने का विकल्प भी नहीं आता। लोकोत्तर जीवन यात्रा हेतु जिनेन्द्र-कथित शाश्वत सिद्धान्तों की श्रद्धा व यथायोग्य आचरण ही शुद्ध/सात्त्विक/पौष्टिक पाथेय है, जो सिद्धत्व तक की यात्रा सरलता से सम्पन्न कराने में सक्षम है।

जीवन के मध्यान्तर के बाद तो बहुत ही व्यवस्थित और पर्याप्त मात्रा में पाथेय का प्रबन्ध करना अनिवार्य है और युवराज इसी दिशा में अग्रसर हो रहा है।

Created by Universal Document Converter

युवराज मन ही मन अपनी मंगल भावना गुनगुनाते हुए घूम रहा है -

हे वीतराग स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
समता जगा हृदय में, मैं राग को नशाऊँ।।
जग में ना कोई अपना, सारा जगत है सपना।
सबसे ममत्व तजकर, मैं मोह को नशाऊँ।।
जग में ना इष्ट कोई, न पर अनिष्ट होई।
वस्तु स्वरूप लखकर, मैं राग-रुष नशाऊँ।।
सब द्रव्य सट के रहते, पर सबसे हट के रहते।
कोई नहीं किसी के, निर्ममता उर में लाऊँ।।
मेरा जनम नहीं है, मेरा मरण नहीं है।
मैं आत्मा हूँ शाश्वत, मरणादि भय नशाऊँ।।
पर का न मैं हूँ कर्ता, है होने योग्य होता।
ज्ञायक स्वरूप लखकर, कर्तृत्व को नशाऊँ।।

अनेक प्रकार के उतार-चढ़ावों से गुजरती हुई जीवन-यात्रा निरन्तर गतिमान है। जीवन यात्रा में उतार-चढ़ाव, विकट व अंधे मोड़, गड्ढे सब कुछ हैं; पर एक दिन, एक घण्टे, एक समय का भी विश्राम नहीं है, यदि है, तो इस जीवन यात्रा पर पूर्ण विराम और अगली यात्रा का प्रारम्भ।

जीवन यात्रा में आने वाले अंधे मोड़ों, गड्ढों अथवा उतार-

Created by Universal Document Converter

चढ़ावों को देखकर कुछ अज्ञ चलती यात्रा पर ही पूर्ण विराम लगाने का निरर्थक/असफल प्रयास करते हैं, जबकि विज्ञजन इन सबको यात्रा का अभिन्न अंग मानते हुए सहज/सहर्ष सावधानी पूर्वक वृद्धिंगत रहते हैं और जीवन यात्रा को सफल ही नहीं सार्थक भी कर लेते हैं।

युवराज अपने मित्र आदि के आग्रह पर दसलक्षण पर्व में एक साथ धर्माराधना करने चैतन्यपुरी आया हुआ है। आज दसलक्षण का प्रथम दिवस है, उत्तम क्षमा धर्मधारक वीतरागी मुनिराजों की पूजा/अर्चना करके युवराज को विशिष्ट भाव हुए कि –

"धन्य हैं वीतरागी दिगम्बर सन्त जो एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य, तिर्यंच, देव नारकी सभी जीवों के चित्र-विचित्र कर्म उदय एवं औदयिक भावों को देखकर भी कषाय भाव नहीं करते। वे मानते हैं सभी संसारी अज्ञानी जीव अपने औदयिक भावों के कारण दुःखी हैं। वे जीव पूर्व जन्म में की गई देव-शास्त्र-गुरु, ज्ञानीजन एवं निजात्मा की विराधना तथा अन्याय, अनीति, अभक्ष्य सेवन के फल में अनेक प्रकार के दुःख भोग रहे हैं। वे जीव स्वयं यह नहीं जानते कि किन अपराधों का फल भोग रहे हैं और वर्तमान में विविध प्रकार के संयोग और संयोगी भावों के वशीभूत होकर क्रोधादि कषायों

Created by Universal Document Converter

में फँस कर माता-पिता, परिजनों का तिरस्कार, धर्म विरुद्ध विचार और आचार तथा दिगम्बर मुनिराजों पर उपसर्ग तक कर रहे हैं, वे सब कषाय की अग्नि में जल रहे हैं, दुःखी हैं और दुःखमय भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। वे जीव क्रोध के नहीं, क्षमा के पात्र हैं - ऐसा समझ कर जीव मात्र के प्रति क्षमा भाव धारण करते हैं।"

युवराज विचार करता है "धन्य है यह मुनि दशा जहाँ क्षमा स्वभावी आत्मा के अवलम्बन से निश्चय उत्तम क्षमा के साथ-साथ उक्त व्यवहार क्षमा भी प्रकट होती है। मैं भी तो इन मुनिराजों को आदर्श मानता हूँ तो मुझे भी अपनी भूमिका के योग्य क्षमा भाव धारण करना चाहिए, तभी उत्तम क्षमा और उसके धारक पंच परमेष्ठी भगवन्तों की आराधना सफल होगी।"

यदि कोई मुझे गाली दे, मेरा तिरस्कार करे, कटु वचन बोले, पुण्योदय से प्राप्त धन सम्पदा छीन ले, कोई पद या स्थान से हटा दे, आज्ञा को न माने तो हे भगवन्! इन सब कार्यों को मैं अपने पूर्व कृत अपराधों का फल समझूँ, अन्य किसी का दोष समझ कर उस पर कषाय भाव न करूँ।

जिस तरह बिना बीज के वृक्ष नहीं होता, बिना शक्कर मिठास नहीं होती, बिना नमक खारापन नहीं होता; उसी प्रकार बिना अपराध के सजा नहीं मिलती। मुझे वर्तमान में जो कुछ भी

Created by Universal Document Converter

लाभ-हानि, यश-अपयश प्राप्त हो रहा है वह मेरे परिणामों/अपराधों का ही फल है, अन्य किसी का दोष देखना भी एक नया अपराध है जिसका फल आकुलता ही है।

जिस तरह कीचड़ के दाग, कीचड़ से नहीं धोए जा सकते, आग की जलन से, आग नहीं बचा सकती इसी तरह पाप के फल को पाप करके नहीं मिटाया जा सकता है। नासमझी में किए गए अपराधों को समझदारी पूर्वक ही धोया/मिटाया जा सकता है। वस्तुस्वरूप की समझदारी शास्त्र स्वाध्याय से ही प्रकट हो सकती है, क्योंकि शास्त्रों के सिद्धान्त वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा प्रकट किए गए हैं, वे शाश्वत सिद्धान्त हैं इसलिए जिनवचनामृत पिओ और आनन्द से जिओ।

हम किसी अन्य के दोष देखकर क्रोध आदि भाव न करें इसके लिए आचार्य अमृतचन्द्र देव के वचन स्मरणीय हैं।

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःख सौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात् पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम्।।

प्रत्येक जीव को जन्म-मरण, लाभ-हानि आदि अथवा जन्म से मरण के बीच होने वाले लाभ-हानि, यश-अपयश, तिरस्कार-पुरस्कार, पढ़ना-लिखना, नौकरी मिलना, पद-प्रतिष्ठा

Created by Universal Document Converter

मिलना, छूटना, हँसना-रोना, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री का मिलना या वियोग होना इत्यादि जो भी कार्य होते हैं वे सब अपने कर्मोदय से होते हैं अन्य कोई इसका कारण नहीं है, अन्य कोई किसी को जीवन-मरण, लाभ-हानि, यश-अपयश देता है, यह अज्ञानियों की मान्यता है।

गहराई से विचार करने पर तो ज्ञात होता है कि 'कर्म विचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई' कर्म तो जड़ अचेतन हैं, कर्मों को जीव से कोई शत्रुता नहीं है जो वे जीव को दुखी करें, न ही मित्रता है जो वे सुखी करें; कर्म तो निमित्त मात्र हैं, हमने ही पूर्व में जैसे भाव किए थे तदनुरूप कर्मों का बंधन हुआ है और समय पाकर वे उन भावों का फल देने के कारण बन रहे हैं, अतः सच में तो हमारे ही पूर्व कृत भाव ही दुःख के कारण हैं। मैंने भूतकाल में जीवों का तिरस्कार किया, मारा-पीटा, अधिकार छीने, अधिकारों का दुरुपयोग किया, देव-शास्त्र-गुरु और पूज्य जनों का निरादर किया उसके फल में ही आज मैं अपमानित हो रहा हूँ, हमारा अपयश फैल रहा है, हम तनाव युक्त जीवन जी रहे हैं मेरी वर्तमान स्थिति का कारण अन्य जीव तो है ही नहीं, पर कर्म का उदय भी सच में मूल कारण नहीं है।

अरे! मैंने अज्ञानता से जब अपना ही स्वरूप नहीं जाना, अपना ही तिरस्कार किया, अपना ही मुँह नहीं देखना चाहा,

Created by Universal Document Converter

अपना नाम भी नहीं सुनना चाहा तो अब मेरा कौन सम्मान करेगा? कौन मेरा मुँह देखना चाहेगा? कौन मेरा यश गान करेगा? अतः अब मुझे अपना अधिकतम जीवन शास्त्र स्वाध्याय में लगाना है, शास्त्र स्वाध्याय भी विद्वान बनकर लेखक या वक्ता बनकर सम्मान पाने के प्रयोजन से नहीं, एकमात्र आत्म-दर्शन करके आत्महित करने की भावना से करना है। मुझे अपने अपराधों की क्षमा याचना अपने आप से और अन्य जीवों से करना है।

'अब भूलों पर रोता ये मन, मेरा हो जिनन्दा।' भविष्य में पुनः अपराध न हों या कम हों इसका प्रयास मुझे करना है।

❀❀❀

धन-पद-यश पाकर बहुतेरे फूले नहीं समाते हैं।
नाच गान, खाने-पीने में जीवन व्यर्थ गँवाते हैं।।
पूर्ण निराकुल सच्चा सुख केवल उनको है मिलता।
तन-मन-धन पद सब ही तजकर जो निज ज्ञायक ध्याते हैं।।

○○○

पापोदय में सब दुविधा और असुविधा पाते हैं।
पुण्योदय में सुविधा अरु साधन मिल जाते हैं।।
पर सच्चा सुख तो उस साधक को ही मिलता -
जो हरपल समता रख सुविधा-दुविधा में मुस्काते हैं।।

Created by Universal Document Converter

2

कल्याणपुर में विगत 12 वर्षों से युवराज स्नेहा के स्नेह पाश में निबद्ध तत्त्व प्रचार हेतु संस्थापित संस्थान में तन–मन से लगा हुआ था। स्नेहा ने तो महाविद्यालय का सम्मानजनक प्राध्यापिका का पद छोड़कर बालिकाओं के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया था, फलस्वरूप अत्यल्प समय में संस्थान अपने निजी भवन में देश–विदेश व्यापी यश के साथ संस्थापित हो चुका है।

जो बोलते हैं उनसे बोलने में, जो काम करते हैं उनसे काम करने में, जो खेलते हैं उनसे खेलने में कभी न कभी भूल हो जाना स्वाभाविक है। भूल होना चाहिए या मुझे भूल करना है ऐसा तो काम करने वाला कभी नहीं सोचता, फिर भी जब तक अपना पुण्य का उदय हो और अन्य को अपनों से काम निकालना हो तब तक हमारी भूल भी फूल लगती है और जैसे ही कर्मोदय बदलता है और अपने से काम निकल जाता है तो फूल भी भूल दिखाई देने लगती है। जिनका एक–एक वाक्य सुनने को हम तरसते हैं, उन्हीं का एक–एक वाक्य भारी लगने लगता है, जिनका हर वचन मार्गदर्शन लगता है, उनका मार्गदर्शन भी मार्ग अवरोधक लगने लगता है।

युवराज–स्नेहा के जीवन में भी संयोग वश इतिहास दोहराया

Created by Universal Document Converter

जा रहा था। इस तरह से घटनाएँ घटित होने लगीं मानो 15 वर्ष पूर्व की फिल्म का फिल्मांकन पुनः किया जा रहा हो, संवाद, घटनाएँ, मान्यताएँ वही; मात्र कुछ पात्र परिवर्तित हो गए।

हमने उनके लिए क्या-क्या नहीं किया?

वे कहते हैं हमने उनके लिए क्या-क्या नहीं किया।

युवराज-स्नेहा को लगता हमने संस्थान संचालन के लिए रात-दिन एक करके, भूखे-प्यासे रहकर, अपने बच्चों का समय काटकर, जहाँ कोई अन्य परिवार या साथी नहीं, सुरक्षा की व्यवस्था नहीं, संसाधन भी न्यूनतम - ऐसी स्थिति में रहकर, समय व कार्य का निर्धारण किए बिना, सब कुछ कर्तव्य हमारा है - ऐसा स्वीकार कर अपने आपको समर्पित कर दिया वहीं पर अब लोग कहने लगे हैं, इन्होंने यह क्यों किया? यह क्यों नहीं किया? और इतना ही नहीं, इन्होंने कुछ भी नहीं किया; इस तरह की शब्दावली और भाव-भंगिमा सुन-देखकर युवराज अन्तरंग में व्यथित, उदास व निराश होकर सोचता है -

जहाँ तक मुझसे मतलब है जहां को,
वहाँ तक मुझको पूछा जा रहा है।
जमाने पर भरोसा करने वालो,
भरोसे का जमाना जा रहा है।।

युवराज जब कभी इस विचारधारा में बहने लगता है, तब

Created by Universal Document Converter

स्नेहा जो कि माँ जिनवाणी की गोद में बैठकर विगत 2 वर्षों से विशेष अमृत पान कर रही है, समझाती हुई कहती है कि "आप किस तरह की असंगत बातें सोचते हैं। जो हुआ या हो रहा है वह कोई नवीन कार्य नहीं हुआ है, जगत का स्वरूप ही ऐसा है। पुराण और इतिहास को उठाकर देख लीजिए। क्या कुणिक ने पद प्राप्ति के लिए राजा श्रेणिक को पदच्युत नहीं कर दिया था? क्या महाराणा कुम्भा को उसके ही पुत्र ने पद पाने के लिए प्राण नहीं ले लिए थे? अरे दूर की जाने दो कुछ वर्षों पूर्व ही एक राजनीतिक दल में युवा पुत्र ने अपने नेता पिताजी को अयोग्य/बीमार सिद्ध करके पद प्राप्त नहीं कर लिया? ये सब तो आपस में सगे रिश्ते में थे। यहाँ तो ऐसा पारिवारिक सम्बन्ध नहीं समाज है और वह भी भिन्न प्रदेशीय, भिन्न-भिन्न प्रकृति के सदस्यों के निमित्त से ये सब कुछ हुआ और हो रहा है।"

स्नेहा ने गम्भीर होते हुए कहा "सच तो यह है कि हमने पूर्व में तत्त्व की विराधना की होगी अतः निरन्तराय तत्त्व प्रचार में सहभागी बनने का अवसर प्राप्त नहीं हो रहा है। भले हमारे ज्ञान में नहीं आ रहा है कि हमने क्या अपराध या भूल की है? किसकी अविनय या तिरस्कार किया है? परन्तु मैं जिन वचनों से यह रहस्य समझ पाई हूँ कि निश्चित ही ये सब अपने अपराधों का ही फल है। हमने किसी को पदच्युत किया होगा, दोष लगाया होगा इसीलिए उसके फल में हमें

Created by Universal Document Converter

लांछित कर तत्त्व प्रचार से वंचित करने का प्रयास किया जा रहा है।

दूसरी बात यह भी है कि जो हमें पदच्युत करते हुए दिखाई दे रहे हैं उन्होंने ही पहले सगा भाई मानकर आपको पदासीन किया था, आपके भरोसे कार्य प्रारम्भ किया था, सभी कार्यों का कर्ता-धर्ता स्वीकार किया था; तो युवराज क्या आप इतना याद नहीं कर पा रहे हैं कि जब सूर्योदय होता है तो सूर्यास्त भी होता है। हम यह समझ लें कि शायद इस कार्य सम्बन्धी अपना सूर्यास्त हो रहा होगा अन्यत्र सूर्योदय भी होगा।

आपने ही एक बार सुभाषित सुनाया था -

उदेति सविता ताम्रः, ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता।।

जिस प्रकार सूर्य उदय तथा अस्त होते समय एक जैसे ताम्र रंग का ही होता है, उसी प्रकार सम्पत्ति और विपत्ति में महान पुरुषों की एक जैसी प्रवृत्ति होती है।

हम भी तत्त्वज्ञान द्वारा पुण्य-पाप दोनों उदयों में समता भाव रख सकें - ऐसा प्रयास करना चाहिए।

सच्चाई यह भी है कि लोक में कहावत है 'जो होता है अच्छे के लिए होता है' तो जो भी घटनाएँ घटित हो रही हैं उनसे मेरी जिम्मेदारियाँ कम होने से मैं अधिक स्वाध्याय कर पा रही हूँ,

Created by Universal Document Converter

जिनवाणी के रहस्य समझ कर अपने परिणामों को निर्मल कर पा रही हूँ और आपके माध्यम से भी कुछ और नया लेखन होना होगा, शायद कुछ और बड़ा काम होना होगा इसीलिए ऐसा सहज संयोग बन रहा हो। पहले भी तो ऐसा ही हो चुका है, अतः हर हाल में हर दिन मस्त रहो। मुझे एक किस्सा याद आ रहा है सुनो तो सुनाऊँ ?" स्नेहा हँसते हुए बोली।

युवराज ने कहा "इसमें पूछने की क्या बात है, सुनाओ न।"

स्नेहा ने मजाक करते हुए कहा – "आपको तो सुनाने की आदत है, सुनने की नहीं इसलिए मैंने सोचा कि पहले पूछ लेती हूँ।"

युवराज ने भी हँसते हुए कहा – "सच कह रही हो मुझे सुनाने की गन्दी आदत है इसीलिए तो हितैषी उस गन्दी आदत को छुड़ाने का प्रयास कर रहे हैं, तुम भी सुना कर इस प्रयास में अपना योगदान करो।"

स्नेहा ने कहा तो सुनो "एक बार एक साधु अपने शिष्यों के साथ विहार करते हुए किसी गाँव में पहुँचे, वहाँ दुर्जन व्यक्ति निवास करते थे। साधु ने उन सबको आशीर्वाद दिया 'आबाद रहो।' दूसरे गाँव में पहुँचे, वहाँ सज्जन व्यक्ति रहते थे साधु ने आशीर्वाद दिया 'बिखर जाओ' अर्थात् बर्बाद हो जाओ।"

इस तरह के आशीर्वाद सुनकर संघस्थ शिष्यों ने समय

Created by Universal Document Converter

मिलने पर अपने गुरु से पूछा "गुरुवर! मुझे आपके द्वारा दिए गए आशीर्वादों के संबंध में शंका हो रही है, आपने दुर्जनों को तो कहा आबाद रहो और सज्जनों को कहा बिखर जाओ। हमारी दृष्टि में तो यह विपरीत आशीर्वाद दे दिया गया है।"

गुरु ने कहा "नहीं वत्स! ऐसा नहीं है, समझने की कोशिश करो दुर्जन को आशीर्वाद दिया कि आबाद रहो, इसी जगह रहकर सुखी रहो, ताकि अन्य गाँव उनके कारण न बिगड़ जाएँ और सज्जन को बिखरने का आशीर्वाद दिया यदि वे बिखरेंगे तो जहाँ जाएँगे वहाँ सज्जनता की सुगंध फैलाएंगे, कुछ ना कुछ अच्छा काम करेंगे इस बात को सुनकर पूरा संघ प्रसन्न हो गया।"

"यह कहानी सुनाने का क्या मतलब।" युवराज ने पूछा।

"युवराज! सच में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपके निमित्त से कहीं और कुछ अच्छा होना है इसीलिए अपने प्रियजन स्वतः अंतःप्रेरित होकर ऐसा कर रहे हैं। ये सभी हमारे उपकारी हैं अतः उपकारी के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए क्रोधित नहीं। वे सभी भी तो अपना समय, श्रम देकर तत्त्व प्रचार ही कर रहे हैं।" मेरी तो भावना यही है -

बस तत्त्व प्रभावना होना चाहिए।
मेरे द्वारा न सही तो तेरे द्वारा सही।।

"अरे वाह! स्नेहा तुम तो शायरी करने लगी हो। तुमने

Created by Universal Document Converter

सरल-सहज शब्दों में परम सत्य का उद्घाटन किया है। बात यह है कि सच में तो मैं तुम्हारे परिश्रम व भावना का तिरस्कार देखकर बहुत अधिक विचलित हो जाता हूँ। अब तुम्हारी भावनाएँ सुनकर मुझे शान्ति हुई है; फिर भी आसानी से सब कुछ भुलाया तो नहीं जा सकता। तुमने अपने हितैषियों के प्रति कृतज्ञ रहने की बात कही है तो इस भाव वाली एक छोटी सी कविता दिमाग में कुलबुला रही है, सुनोगी?'' हँसते हुए युवराज ने कहा।

''कविता छोटी सी हो या बड़ी सी, मैं तो आपकी पहली श्रोता हूँ तो सुनना ही पड़ेगी, सुनाइए।''

तो सुनिए कविता का शीर्षक है – '**मैं उन्हें कभी नहीं भूल सकता।**'

जिन्होंने
अंगुली पकड़कर चलना सिखाया
पढ़ना-लिखना सिखाया
अपना निर्णय स्वयं करना सिखाया
तत्त्वज्ञान व श्रावकाचार सिखाया
सुख-दु:ख मान-अपमान में
समता भाव धारण करना सिखाया
क्रमबद्ध और कर्मबद्ध का ज्ञान कराया
जब मैं एक जगह खड़ा रह गया था

Created by Universal Document Converter

तब
जिन्होंने मेरी काबिलियत समझ
धक्का मारकर भी आगे बढ़ाया
मैं
उन्हें कभी नहीं भूल सकता।

कविता सुनाकर युवराज ने तालियों की आवाज सुनने के लिए स्नेहा की ओर देखा तो वहाँ तो कोई था ही नहीं। अरे! ये तो युवराज अपने अन्दर में ही अन्तर्यात्रा कर रहा था।

चैतन्यपुरी में आदि के साथ रहते हुए दसलक्षण पर्व मनाते हुए भी न जाने क्यों युवराज को ये विचार आ गए। आज उत्तम मार्दव दिवस के दिन मान रहित पंच परमेष्ठियों की पूजा-अर्चना की थी। श्रीमद्जी ने सच ही कहा है? ''यदि मनुष्य गति में मान नहीं होता तो यहीं मोक्ष हो जाता।''

मैं जो अभी विचार कर रहा था वह भी तो मान कषाय का ही स्वरूप है। मेरा पद, मेरा अधिकार, मेरे बिना कुछ नहीं हो सकता, कुछ नहीं होना चाहिए, मुझसे पूछा नहीं तो मैं सब बिगाड़ कर रख दूँगा, मेरा अपमान हो गया, घर या समाज में मेरी चलती नहीं है, मुझे पूछते नहीं है इत्यादि जो भी भावनाएँ हैं, वे सब मान कषाय ही तो हैं।

छोटे-बड़े की भावना मान का आधार है। जबकि मान-

Created by Universal Document Converter

अपमान की भावना बिल्कुल निराधार है। स्वाभिमान के नाम पर भी मैं अपने मान का ही पोषण कर रहा हूँ।

स्वाभिमान तो सच में करने योग्य है पर उससे पहले स्व को समझना आवश्यक है। मैं मनुष्य, पुरुष, पण्डित, धनवान, विद्वान, मालिक, नौकर, अध्यक्ष, ट्रस्टी, पदाधिकारी, कार्यकर्ता, पति-पत्नी, पिता-पुत्र इस रूप में स्व मानता हूँ, सच में यह मेरा स्व नहीं है, मेरा स्व तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र, सुख, वीर्य आदि अनन्त गुणों का भण्डार है। जिसे न कोई छीन सकता है, न चुरा सकता है न बाँट सकता है न कोई हटा सकता है। इस 'स्व' का अभिमान ज्ञानियों को होता है और पर को स्व मानकर स्वाभिमान के नाम पर मान कषाय अज्ञानियों को होती है। इस समय मैं वही कषाय ही कर रहा हूँ। मैं भी तो पद पाने की लालसा में झुलस रहा हूँ, मैं भी पदच्युत होने पर खेदखिन्न हो रहा हूँ जबकि जगत के सारे पद अपद हैं। आचार्य अमृतचन्द्रदेव के वचनों का पद्यानुवाद आदरणीय छोटे दादा ने किया है, जो कितना आनन्ददायक है -

अपद पद में मत्त नित अंधे जगत के प्राणियो,
यह पद तुम्हारा पद नहीं निज जानकर क्यों सो रहे ?
जागो इधर आओ रहो नित मगन परमानन्द में।
हो परम पदमय तुम स्वयं तुम स्वयं हो चैतन्यमय।।

Created by Universal Document Converter

अरे! जिसके सामने हों सभी पद भासित अपद।
सब आपदाओं से रहित, आराध्य है वह ज्ञानपद।।

जो मेरा वास्तविक पद है, उस पद से में स्वयं च्युत होकर दर-दर की ठोकरें खा रहा हूँ। कर्मोदय से प्राप्त जाति, कुल, बल, ऋद्धि, ज्ञान, तप, रूप, यश आदि को भ्रम से अपना मानकर उनके कारण ही दीनता, हीनता, महानता की मान्यता करके मान के शिखर पर बैठ जाता हूँ। मान के शिखर पर चढ़ जाने से अन्य सभी जीव तुच्छ दिखाई देने लगते हैं। आज जिनवाणी के सदुपदेश से उस शिखर से उतरकर नीचे देखा तो पता चल रहा है कि कोई छोटा-बड़ा है ही नहीं, सभी आत्माएँ समान हैं।

रुपया, पैसा, मकान-दुकान, गाड़ी-बंगला, सोना-चाँदी ये सब मेरे साथ आए नहीं, मेरे साथ जाएंगे नहीं क्योंकि सच में ये मेरे नहीं हैं, मेरा सो जावे नहीं, जावे सो मेरा नहीं। पुण्योदय से धन, परिजन का सहज संयोग बनता है और पापोदय में वियोग हो जाता है; जबकि मेरा ज्ञान धन तो सदा शाश्वत है - ऐसा शाश्वत ज्ञान धन प्रत्येक जीव के पास है अतः हम सब समान हैं - ऐसा समझ कर मान कषाय को जीतकर अब सिद्ध समान पद पाना है - ऐसा उच्च लक्ष्य बनाकर इस नर जन्म को सफल बनाना है।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

3

कल्याणपुर संस्थान के पदाधिकारियों की परिवर्तित मानसिकता के कारण युवराज के मन की सहज विकलता को जानकर एक बार युवराज के परम मित्र अजेय ने भजन की पंक्तियाँ –

जल से गलता रवि से जलता कमल जगह छूट जाने पर।
मित्र अरि हो जाएँ क्षणिक में अशुभ कर्म के आने पर।।

सुनाते हुए वस्तुस्थिति को स्वीकारने हेतु समझाया था –

सच में हम अपनी जीवन यात्रा में अनेक बार अनुभव करते हैं कि जिनके साथ हमने कुछ भी भला नहीं किया, परिचय भी अधिक नहीं है, फिर भी वे हमारे मित्र बन जाते हैं, जहाँ हमारा पसीना गिरे, वहाँ अपना सर्वस्व लगाने तैयार हो जाते हैं, धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो हमारा जन्मों का सम्बन्ध है। लौकिक भाषा में कहें तो दो शरीर, एक प्राण बन जाते हैं। वहीं ऐसा भी होता है कि जो हमारे घनिष्ठ मित्र थे, जिनके लिए अपना समय व श्रम दिया, जिनके स्वप्न को अपना स्वप्न मानकर रात-दिन जाग कर पूरा किया, वे ही अचानक शत्रुता का व्यवहार करने लगते हैं। हमारी असुविधाओं को देखकर प्रसन्न होने लगते हैं, हमारी सुविधाएँ उनको अखरने

Created by Universal Document Converter

लगती हैं, हमारा समर्पण मूर्खता लगने लगता है। ऐसा क्यों होता है ? इसी बात को समझने के लिए उक्त पंक्तियाँ चिन्तनीय हैं –

जिस जल में और सूर्य के उदय होने पर कमल खिलता है वही कमल यदि कमलनाल से अलग होकर पानी में गिरे तो वही पानी कमल को गला देता है और धरती पर गिरे तो सूर्य जला/सुखा देता है। इसका अर्थ हुआ कि कमल के खिलने में पानी और सूर्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ और है जिसके बल पर वह खिलता है, जिसके होने पर जल और सूर्य उसके खिलने में कारण बनते हैं और नहीं होने पर यही शत्रु बनकर नष्ट कर देते हैं।

इसी प्रकार पारस्परिक परिचय, प्रेम, काम, समर्पण से मित्रता होती है; परन्तु ये सब होते हुए भी मित्रता, शत्रुता में बदल जाती है। इसका अर्थ है कि इनके अतिरिक्त भी जीव के जीवन में कोई और है जो मित्रता, शत्रुता कराने वाला है और वह है शुभ-अशुभ कर्म। पुण्य कर्म के उदय में सभी मित्र बन जाते हैं और पाप कर्म के उदय आने पर मित्र, परिजन शत्रुता का व्यवहार करने लगते हैं – ऐसा होने में सच में मित्र या परिजन का दोष नहीं है, अपने ही कर्मोदय तथा स्वयं की सहज योग्यता ही कारण है।

Created by Universal Document Converter

युवराज ने जिन स्थानों को स्थिर, अपना, नित्य मानकर स्वीकार किया, वहाँ से अब कभी नहीं हटेंगे ऐसी भावनाएँ भायीं, व्यवस्थाएँ बनाईं पर स्वयं की क्रियावती शक्ति और धर्मद्रव्य तथा कर्मोदय का निमित्त पाकर सहज ही गमन हो गया – ऐसा शायद होना ही चाहिए, क्योंकि इस जीवन यात्रा में अभी पूर्ण विराम कैसे लगाया जा सकता है कहा भी है –

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस मंजिल तक जिसके आगे राह नहीं।।

अब तो यह जीवन यात्रा, 'विकार विजय यात्रा' बने। अब तो केवल आत्मानुभूति और तत्त्व प्रचार जीवन का लक्ष्य बने इसके लिए जिन वचनामृत का पाथेय आवश्यक है। जिनवचनामृत पान किए बिना भूखे-प्यासे यदि जीवन यात्रा करेंगे तो निश्चित ही आकुलता/तनाव में ही देह परिवर्तन होगा जो भावी जीवन में और अधिक प्रतिकूलताओं का कारण बनेगा, इसलिए सावधानी पूर्वक ही अब आगे कदम बढ़ाना चाहिए।

गार्हस्थ्य जीवन में परिवार, व्यापार, समाज के बीच रहते हुए अनेक प्रकार के आरम्भ-परिग्रह के कार्य करना पड़ते हैं, उन कार्यों में सफलता-असफलता अपने कर्मोदय से प्राप्त होती है; पर हम अज्ञानता से उन सफलताओं को अपनी होशियारी/चालाकी/कूटनीति/समझदारी का फल मानते हैं। सर्वत्र ही अपने

Created by Universal Document Converter

छल-प्रपंच के माया जाल को फैला कर 'मुँह में राम, बगल में छुरी' की कहावत को चरितार्थ करते हुए दूसरों की झूठी प्रशंसा, यशगान करके अर्थात् गधे को भी बाप बनाकर एवं काम निकल जाने पर बाप को भी गधा समझकर अपनी चतुराई मानते हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि हमारी यह चतुराई/चालाकी, मन-वचन-काय की विद्रूपता - ऐसा जाल है जिसमें फँसता हुआ दूसरा दिखता है पर फँसते हम स्वयं हैं, जिसके फल में तिर्यंच गति में जाकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगना पड़ते हैं।

विडम्बना तो यह है कि हम अन्य के साथ तो छल करते ही हैं पर धर्म के क्षेत्र में छल करके स्वयं को ही ठगते हैं -

लोगों के सामने जिनवाणी की महिमा गाएँगे, जिनवाणी बिना सुने शान्ति नहीं मिलेगी, जिनवाणी ही पढ़ने-सुनने योग्य है - ऐसा सबके बीच बोलकर स्वयं को धर्मात्मा/विचारक/प्रचारक सिद्ध करेंगे और प्रवचन के समय घर भाग जाएँगे।

कभी स्वाध्याय/पूजन के लिए व्यापारिक व्यस्तता, पारिवारिक समस्या, शारीरिक अस्वस्थता का बहाना करके बचते हैं।

भगवान के समक्ष जन्म को रोग बताकर उसे मिटाने के लिए जल समर्पित करते हैं और बाहर आकर प्रसन्नतापूर्वक हजारों रुपए खर्च करके जन्मदिन मनाते हैं।

दान देने के अवसर पर आर्थिक व्यवस्था नहीं है कहते हैं

Created by Universal Document Converter

और शादी की सालगिरह, बच्चों के जन्मदिन पर लाखों रुपए खर्च करते हैं।

तीर्थ यात्रा के लिए समय नहीं है कहते हैं और पर्यटन स्थल घूमने प्रतिवर्ष जाते हैं।

बच्चों को पाठशाला भेजने के लिए समय नहीं है कहते हैं और खेलने-कूदने, टीवी देखने के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि अकेले किताबी कीड़ा नहीं बनना चाहिए।

स्वाध्याय सभा में पहुँचेंगे तो सिर हिला-हिला कर, मैं आत्मा/ज्ञायक हूँ - ऐसा कहेंगे और अंतरंग में मैं मनुष्य, पुरुष, व्यापारी हूँ की मान्यता और निरन्तर तदनुरूप ही क्रिया चलती है।

भगवान अकर्ता/वीतरागी हैं - ऐसा कहते हुए उनसे लौकिक इच्छाओं की पूर्ति का अभिप्राय रखते हैं। कहा भी है -

चेतन ज्ञाता मात्र है, गुण अनन्त भण्डार।
कर्ता या नर मानना, ही है मायाचार।।

चैतन्यमय आत्मा को पर का कर्ता मानना या अरूपी आत्मा को मनुष्य/पुरुष/स्त्री मानना यह मायाचार है, इस मायाचार के कारण ही लौकिक मायाचार की भी परम्परा वृद्धिंगत होती है।

अरे! हम ज्ञायक के गीत गाकर ज्ञायक के गायक तो बन गए

Created by Universal Document Converter

परन्तु ज्ञायक नहीं माना। अकर्ता स्वभाव का प्रवचन करके उन प्रवचनों का कर्ता मान लिया। जगत में कुछ भी मेरा नहीं है कह कर भी जो संयोग मिला उसे अपना मान लिया अरे रे -

जो अपना नहीं उसके अपनेपन में जीवन चला गया।
पर मैं अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया।।

इस प्रकार से अलग-अलग मुखौटे लगाना, कहना कुछ और करना कुछ ये सब अपने साथ मायाचार है।

इस मायाचार से बाहर निकाल कर सरलता की ओर लाने के लिए परम पूज्य जिनवाणी माँ कहती है - हे भव्य!

मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सों करिये।

मन को इतना पवित्र बनाओ, सरल बनाओ, मन से दुर्भावनाएँ हटाओ जिससे कि आप जो मन में सोचें यदि वह वचन में आ जाए तो निकटवर्तियों को लगे कि पुष्पवृष्टि हो रही है और यदि उसी परमार्थ चिन्तन के अनुसार ही कार्य हो जाए तो सभी लाभान्वित होकर प्रसन्न हो जाएँ।

अपने मन में उठने वाली चालबाजी/कुटिलता/स्वार्थ परता/ईर्ष्या/प्रतिस्पर्धा की दुर्भावना को आग समान समझकर, सरलता/सज्जनता/समर्पण/समन्वय/ईमानदारी/नैतिकता के गुण प्रकट करो क्योंकि किसी भी कार्य में सफलता चालाकी से नहीं पुण्य उदय

Created by Universal Document Converter

से मिलती है और जो चालाकी/छल-प्रपंच/कुटिलता का भाव रखेगा उसे पुण्य का बंध ही नहीं होगा तो उसे पुण्य का उदय कहाँ से आएगा ? जब बीज बोया ही नहीं है तो अंकुर कहाँ से उगेगा ?

इस गृहस्थ जीवन में ईर्ष्या/प्रतिस्पर्धा करना भी है तो अच्छे कामों में करो। अपनी होशियारी का उपयोग निज-पर की उन्नति में करो, दूसरों को गिराने, दूसरों से छीनने, अनधिकृत चेष्टा करने, कर्तव्यों से बचने के लिए मत करो अन्यथा यह ईर्ष्या/प्रतिस्पर्धा की आग जलाकर नष्ट कर देगी, लोक में अपयश फैलेगा, शान्ति-पथ से दूर हो जाएंगे। मिलेगा तो केवल और केवल तिरस्कार, अशान्ति, आकुलता, तनाव और हमारे जीवन की विकास यात्रा, जीवन की विनाश यात्रा हो जाएगी, हमारी पदोन्नति के स्थान पर पदावनति हो जाएगी, अतः अब मुझे जिन वचनामृत का पाथेय लेकर अपने विकारों पर विजय प्राप्त करते हुए शान्ति पथ पर गतिमान होना है तभी जीवन सार्थक होगा।

❁❁❁

सिद्धों को आदर्श बनाकर निज-पर में थापन करता।
रहे देह में पर जो आतम को अशरीरी है लखता।।
सिद्ध दशा को साध्य बनाता, ध्येय बनाता निज आतम-
ध्रुव-अनुपम अरु अचल सिद्धपद उसी भव्य को है मिलता।।

Created by Universal Document Converter

4

देश भर में दसलक्षण पर्व की धूम मची हुई है। साधर्मियों को ये पर्व आत्मसाधना-आराधना का 'सीजन' है। हर साधर्मी जितना अधिकतम समय निकालकर पूजन, स्वाध्याय, सामायिक, चिन्तन-मन्थन कर सकता है वह अपनी योग्यता/भावना के अनुसार अवश्य ही करता है, यथायोग्य संयमित जीवन जीता है।

चैतन्यपुरी में युवराज भी आदि के साथ भक्तिभावपूर्वक दसलक्षण पर्व मना रहा है। मानव मन की यह कमजोरी ही है कि जिन बातों को याद नहीं करना चाहिए वे और अधिक याद आती हैं। युवराज को याद आ रहा है कि किस तरह कल्याणपुर की संस्था हेतु दसलक्षण पर्व के मांगलिक प्रसंगों पर भी अपनी विशेष आराधना छोड़कर देश भर में उसने भ्रमण किया, अर्थ-व्यवस्था हेतु लोगों से आग्रह किया और संस्थान को व्यवस्थित करने में अपने समय व श्रम का दान किया। सबको अर्थ दान का तो महत्त्व आता है, अर्थ दानियों के नाम टंकोत्कीर्ण किए जाते हैं; पर व्यक्ति के समय व श्रमदान का मूल्य बहुत कम आँकते हैं और यहाँ तक कि अन्त में तो उसका मूल्य शून्य बतला कर खिसका दिया जाता है, इस बात का खेद उसके मन में बार-बार होता है।

Created by Universal Document Converter

युवराज ने जब आदि से बात करते हुए कहा कि "मैं जगह-जगह जाकर कल्याणपुर के लिए कितना पैसा लाया था, लोगों को संस्था से जोड़ा था सबके जुड़ने में मैंने बहुत परिश्रम किया-ऐसा लग रहा था कि जैसे पूरे संस्थान को मैं ही चला रहा हूँ और जब संस्थान खड़ा हो गया तब पता चला कि जैसे मैं वहाँ कुछ हूँ ही नहीं।"

युवराज की बात सुनकर आदि ने गम्भीरता पूर्वक कहा "प्रिंस! तुम मेरे से अधिक विचारक, तत्त्व प्रचारक हो फिर भी तुम भावुकता में सत्य को भूल रहे हो, अतः एक मित्र होने के कारण मैं उस सत्य को याद दिला रहा हूँ जिसे तुम जानते हुए भी मान नहीं पा रहे हो। हो सकता है तुमको मेरा कहना बुरा लगे।"

"अरे आदि कैसी बात कर रहे हो तुम्हारी बात मुझे क्यों बुरी लगेगी और लगे तो लगने दो। तुम मेरे सच्चे मित्र हो, अतः मित्रता का फर्ज अदा करो।" युवराज ने स्नेह पूर्वक कहा।

"तो सुनो! सच्चाई यह है कि तुम्हारे रहने या परिश्रम करने से दान नहीं आया है, तत्त्व प्रचार का योग था, बालिकाओं का पुण्य था, दानदाताओं की स्वयं की भावना थी। अकेले तुम्हारा नहीं पूरी टीम का प्रयास था, भले उस समय तुम टीम के आगे थे, पर पूरी टीम पर विश्वास करके समाज ने उत्तम कार्य हेतु

Created by Universal Document Converter

सहयोग किया था इसलिए अपने दिमाग से यह कचरा निकालने का प्रयास करो कि मैंने किया, मैं पैसा लाया, मैंने लोगों को जोड़ा।

यदि तुम्हारे कहने से लोगों ने पैसा दिया है तो मैं कहता हूँ कि मुझे फैक्ट्री खोलने के लिए 25 लाख रुपए चाहिए, समाज से मुझे दिला दो।''

''फैक्ट्री खोलने कोई पैसे क्यों देगा ?''

''क्यों तुम्हारी बात मानते हैं न सब ?''

''वह तो मैं मन्दिर, छात्रावास, साहित्य के लिए कहता हूँ तो लोग देते हैं।''

''बस तो समझ लो दानदाता केवल नाम देखकर नहीं काम देखकर भी सहयोग करते हैं। उस काम, स्थान, लाभार्थियों का भी अपना योग/पुण्य होता है। केवल एक व्यक्ति के पुण्य के भरोसे 100 नहीं खाते हैं, 100 का अपना अपना पुण्य है। दान देने वालों की भी अपनी भावना है। भाई याद करो जब, जो, जहाँ, जैसे, जिसके द्वारा कार्य होना है वह उसी प्रकार से होगा उसे बदलने में इन्द्र, महेन्द्र, जिनेन्द्र भी सक्षम नहीं हैं।

प्रिंस ! तुम दूसरों को शौच/पवित्रता प्रकट करने का उपदेश देते हो और स्वयं लोभ के कीचड़ में फँसकर अपने मन को अपवित्र कर रहे हो।''

Created by Universal Document Converter

"अच्छा ! मैं लोभ कर रहा हूँ ? मैंने क्या लोभ किया ? मैंने किसी से, कभी, कोई अपेक्षा नहीं की है भाई।"

"अरे वाह पण्डितजी ! लगता है तुम्हारा प्रवचन मुझे तुम्हें ही सुनाना पड़ेगा।" हँसते हुए आदि ने कहा।

"अरे भैया ! तुम तो मुझसे अच्छे विचारक हो, तुमने अध्ययन काल में भी मुझे संभाला है, अभी भी प्रवचन याद दिलाकर मेरी मति व्यवस्थित कर दो। मैं तो प्रवचन रोज ही सुना रहा हूँ, आज मैं भी पण्डित आदि कुमार का प्रवचन सुनने के लिए वक्ता से श्रोता बन जाता हूँ।" युवराज ने हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा।

"अच्छा ऐसी बात है। लगता है तुम मुझे हल्के में ले रहे हो।"

"नहीं, मैं सच में आज सुनने के ही मूड में हूँ।"

"तो सुनो ! तुमने कहा कि मैं किसी से, किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् पैसा, पुरस्कार, सुविधा का लोभ नहीं है। यह बात सत्य है कि तुम इन सब की अपेक्षा किए बिना काम करते रहे हो यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। पैसे का लोभ तुम्हें प्रारम्भ से ही नहीं है यह भी मुझसे अधिक कौन जानता होगा। जब 40 साल पहले अध्ययन काल में मैं तुम्हें 10 रुपए जबरदस्ती ये तुम्हारे हैं कह कर दे रहा था तब तुमने गुस्से में उस नोट को फाड़ कर फैंक दिया था वह दृश्य मुझे आज भी याद है। पर भैया ! पैसे का लोभ होना ही तो लोभ नहीं है। तुम्हारे मन में जो

Created by Universal Document Converter

ये बात आती है कि – 'मुझे कुछ अपेक्षा नहीं है' इस बात को सब जाने, माने और इस बात का मुझे सम्मान दें, मेरे अनुसार चलें यह भी तो मेरे प्यारेलाल लोभ ही है।''

तुम क्या जानते नहीं हो कि धन, पद, रूप, विषय-भोग, नाम, मान, प्रतिष्ठा आदि अनेक रूपों में लोभ मन में छुपा रहता है। लोभ के वशीभूत होकर जीव पाप करता है, लोभ के कारण ही लोग किसी के भी पैर पड़ने, गाली सुनने को तैयार हो जाते हैं तो लोभ के कारण ही किसी का गला काटने को भी प्रस्तुत हो जाते हैं।

पद के लोभ में न्याय-नीति भूलकर बड़े जनों का अविनय करते हुए, लांछन लगाकर, अयोग्य व्यवहार करके अन्य को पदच्युत कर पद प्राप्त करता है और जो पद पर बैठा हुआ है वह साम, दाम, दंड, भेद से किसी भी प्रकार से पद पर बना रहना चाहता है।

धन के लोभ में कैसे भी धन कमाता है और नाम के लोभ में अथवा विषय-भोग के लोभ/राग में किसी भी प्रकार से खर्च करता है।

धन का लोभी माता-पिता भाई-बहन के धन का भी अपहरण /अतिक्रमण कर लेता है। अरे कहाँ तक कहें लोभी दान से प्राप्त संस्थानों, मन्दिरों के धन का भी गबन कर लेता है, दुरुपयोग करता है।

Created by Universal Document Converter

रूप का लोभी रावण का रूप बनाकर गलियों में घूमता है, बलात्कार करने से तक नहीं चूकता उसके मन में निरन्तर कुशील का भाव चलता है जो निरन्तर ही पाप का कारण है। लोभी अविवेकी होकर कार्य कर्ता है, निर्माल्य का उपभोग करता है, मोक्ष फल प्राप्ति के लिए फल चढ़ाकर उसी फल के एवज में मन्दिर के सेवक से झाड़ू लगवाता है इस कारण मन्दिर की झाड़ू तो अच्छे से लग जाती है परन्तु मोक्षरूपी फल दूर ही रह जाता है।

लोभ को भैया पाप का बाप कहा है। कहा भी है -

त्रैलोक्येऽपि ये दोषास्ते सर्वे लोभ संभवाः।
गुणास्तथैव ये केऽपि ते सर्वे लोभवर्जनात्।।

तीन लोक में जितने भी दोष हैं वे सब लोभ से होते हैं और लोभ के रुक जाने पर सभी गुण प्रकट होते हैं।

इसलिए मेरे प्रिय युवराज! तुम अपने चित्त की चंचलता को रोको।

मित्रता की दृष्टि से देखते हैं तो हम सभी को लगता है कि तुम्हारे साथ अच्छा नहीं हुआ; हम सब भी केवल तुम्हारे कारण यहाँ के कार्य से जुड़े हुए थे। संस्थान प्रारम्भ करने से पहले स्नेहा को तुम्हें छोड़कर भी कार्य करने के लिए अनुमोदन किया था। हमने कार्य की परिस्थितियों को भी भली-भाँति देखा है, तुम

Created by Universal Document Converter

दोनों की भावनाओं व परिश्रम को जानते हैं; परन्तु तुम और तुम्हारे साथ हम केवल लौकिक जन की ही तरह सोचने/रहने के लिए नहीं हैं। श्रीमद्जी का एक वाक्य तुम बहुत बोलते हो जो मैं याद दिला रहा हूँ –

''यदि आप और हम लौकिक जनों जैसी प्रवृत्ति करेंगे तो लोकोत्तर प्रवृत्ति कौन करेगा?''

''भैया! यह जीवन आत्मानुभूति और तत्त्व प्रचार के लिए मिला है। बहुत थोड़ा जीवन शेष है अतः अब आत्मानुभूति में ही लगना चाहिए फिर भी तुम्हारा राग न माने तो भूतकाल को भूलकर, आत्महित की भावना से निरपेक्ष भाव पूर्वक तत्त्व प्रचार के कार्य में लगना चाहिए। जितना काम होना होगा वह होगा। आकुलता/तनाव/अहंकार/कर्तृत्व/अपेक्षा के भाव मन में जागृत न हों बस यही कामना है। हम तुम्हारे साथ सदा की तरह हैं ही।'' आदि ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

''अरे वाह आदि! मजा आ गया। तुमने सचेत करके सच्चे मित्र होने का दायित्व निर्वहन किया है। मुझे सच में हँसमुख भाई साहब, आदि, अजेय, महेश जैसे मित्र, स्नेहा जैसी सहधर्मिणी एवं सहज व मुक्ति जैसे बच्चे मिले जिनके कारण में तत्त्व प्रचार के कार्य तो एक से बढ़कर एक कर ही पाता हूँ साथ ही कभी मानसिक/भावनात्मक स्खलन हो रहा हो तो तुम सब मुझे संभाल भी लेते हो।''

Created by Universal Document Converter

तेरा साथ है तो मुझे क्या कमी है।
अँधेरों से भी मिल रही रोशनी है।।

"अरे भैया! ज्यादा भावुक न होओ। हम सभी एक ही नौका के सवार हैं, अलग-अलग नहीं। सच में तो हम सब तुम्हारे विचारों के पीछे सदा सहमत व सक्रिय रहने वाले हैं तुम इंजन और हम डिब्बे हैं। आज तो तुम्हारी उदासी देखकर रहा नहीं गया तो तुम्हारा ही वक्तव्य तुम्हें याद दिलाया है। जब तक अनन्त गुणात्मक निज चैतन्य परमात्मा में अहम् बुद्धि नहीं आएगी, चैतन्य चिन्तामणि का विश्वास नहीं होगा तब तक उपयोग संयोगों, विषय-भोगों, पर की ओर जाए बिना रहेगा नहीं, पर की ओर जाने वाला उपयोग, पर के प्रति राग, आसक्ति, सुख बुद्धि ही अपवित्रता है और अपने आत्मा का अवलम्बन लेकर पूर्ण तृप्त/निर्मल पर्याय का प्रकट होना ही शौच धर्म है।"

"आदि! आज बहुत ही अच्छी चर्चा हुई है। मैं अपनी मति को भी व्यवस्थित करने का प्रयास करूँगा। जो हम सभी तत्त्व प्रचार का नया कार्य प्रारम्भ कर रहे हैं उसमें सभी की सहभागिता मिलेगी ऐसा विश्वास है।"

'निस्संदेह।'

'धन्यवाद।'

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

5

युवराज की टीम के वरिष्ठ सदस्य हँसमुख भाई साहब हैं। यथा नाम तथा गुण। उनके चेहरे से कभी ज्ञात नहीं हो सकता है कि वे बाह्य प्रतिकूलता में हैं। पारिवारिक/मानसिक तनाव चल रहा हो तब भी सदैव प्रसन्न रहते हैं। बीमार व दुःखी व्यक्ति को भी प्रसन्न कर देना उनकी विशेषता है। 'हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते' और 'मुस्कुराते रहो, मुस्कुराने में कारण बनो' मानो उनके मूल मन्त्र हैं। वे कहते हैं ''राजू हँसने का अवसर केवल मनुष्यों के ही पास है पशुओं के पास नहीं, तब फिर हम मनुष्य होकर कुछ अलायक लोगों से प्रभावित होकर पशुओं की तरह मुँह लटकाए क्यों घूमें ? हम तो हर हाल में प्रसन्न रहेंगे, जिन्हें हमारी प्रसन्नता देखकर रोना हो तो रोओ, तनाव में रहना हो तो रहो, पर उनके कारण हम अपनी प्रसन्नता नहीं खोयेंगे।''

हर हाल में, हर दिन मस्त रहो के सिद्धान्त को लेकर चलने वाले हँसमुखजी भाईसाहब के साथ यदि किसी बीमार व्यक्ति से मिलने या उठावने में जाना हो तो युवराज यह याद दिलाने को उनका कुर्ता पकड़कर रखता है कि भाईसाहब अभी थोड़ी देर गम्भीरता से बैठना है अभी हम उठावने में आए हैं। यह पाबन्दी उनके मूल स्वभाव के विपरीत होती है फिर भी लोकाचार

Created by Universal Document Converter

निभाने के लिए जब वे गम्भीरता धारण करते हैं तब तो ऐसा हो जाता है कि जाते बीमार से मिलने पर उनके चेहरे से लगने लगता है कि उठावने या शोक सभा में आए हैं। बाहर निकलते ही वे 10 मिनट की गम्भीरता को किसी न किसी मजेदार डायलॉग से 2 मिनट में अपनी प्रकृति की भरपाई कर लेते हैं।

हँसमुख भाईसाहब हँसते रहते हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके जीवन में कोई प्रतिकूलता नहीं है या वे समाज/संस्था के दुर्व्यवहार के भुक्त भोगी नहीं हैं। उन्होंने भी अपना पूरा जीवन संस्थाओं के लिए समर्पित किया, प्रचार-प्रसार के लिए गाँव-गाँव घूमे, बस में गए, ऑटो में गए, ट्रेन में बिना आरक्षण के गए, परिवार से महीनों दूर रहे, रात-दिन जनसम्पर्क, संचालन, छात्रों का ध्यान, संस्था की व्यवस्थाएँ, संस्था में आने वाले अतिथियों का अपने घर के मेहमान जैसा घर पर स्वागत, क्या-क्या नहीं किया; परन्तु जैसे ही कम्प्यूटर (नये युग की नयी पीढ़ी) का युग आया तो मान लिया गया कि अब उनकी कोई उपयोगिता नहीं है, अब उनके मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है। बस जब जरूरत पड़े तो जैसे गाड़ी में स्टेपनी का उपयोग कर लिया जाता है वैसे ही उपयोग कर लो और बाद में फिर डिब्बे में बन्द कर दो।

समाज ने उनका पूरा दोहन किया। लगभग 40 साल की

Created by Universal Document Converter

सेवा देकर अन्त में शून्य। ट्रस्टी तो ट्रस्टी ही हैं, जरूरत पड़ेगी तो उनके बच्चे, फिर उनके बच्चे ट्रस्टी/अधिकारी बन जाएँगे जैसे कि नेता का बेटा नेता, विद्वान का क्या है एक हँसमुख जाएंगे तो कोई दूसरा खोज लिया जाएगा।

भाईसाहब तो इन सब परिस्थितियों को क्रमबद्धपर्याय के रूप में स्वीकार करते हुए स्वयं कभी कुछ कहते ही नहीं हैं; पर अन्यत्र ऐसी परिस्थिति में कोई विद्वान कुछ कहे तो संस्थापक/संचालक यह कहने से कहाँ चूकते हैं "आपने 10-20-30 जितने भी साल काम किया है, तो हमने भी तो खाने-पीने रहने लायक पूरा वेतन दिया है, अब काम नहीं तो दाम नहीं। किसी वृद्ध आश्रम में रहना हो या बच्चों की पढ़ाई आदि के लिए कभी कोई जरूरत हो तो हमें बताना हम व्यवस्था करवा देंगे।"

युवराज इन परिस्थितियों का एक नहीं दो-दो बार का अनुभवी है। यह तो पुण्योदय था कि वह शासकीय सेवा में है अतः कभी भी समाज से न आर्थिक अपेक्षा थी, न है, न रहेगी पर स्नेह व अधिकार की अपेक्षा थी वह भी देने में देने वाले किसी भ्रम में पड़कर कंजूसी कर गए।

युवराज को संस्था में कमर तोड़ मेहनत करते हुए देखकर हँसमुखजी ने फोन पर कहा था - "राजू! परिवार की इतनी उपेक्षा करके संस्था के लिए लगना अच्छा नहीं है, तू समाज को

Created by Universal Document Converter

जानता नहीं है, मेरे पास 10 संस्थाओं के प्रमाण हैं कि जहाँ अपना जीवन समर्पित करने वाले नींव के पत्थर के समान संस्था को मजबूती प्रदान करने वाले विद्वानों को अधिकारियों ने दूध में गिरी मक्खी के समान अलग कर दिया है। तू भी भोग चुका है और जानता भी है, बस अन्तर यह है कि तत्त्वज्ञान के श्रद्धान से अन्य विद्वान प्रत्यक्ष कुछ कहते नहीं हैं, मैं तुमसे कहता हूँ और तू है कि कहता ही नहीं लिख भी डालता है, पर ये भी सही है कि कहने, लिखने से कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला क्योंकि कालचक्र में शायद ऐसा ही होता आया है।''

''पर भाईसाहब! सत्य सनातन धर्म के प्रचार करने वाली संस्थाओं में ऐसा क्यों हो रहा है?''

''सच तो यह है राजू! कि सत्य धर्म के प्रचार-प्रसार के नाम पर संस्थाओं के माध्यम से कुछ परिवार, व्यक्ति अपना प्रचार कर रहे हैं या संस्थाएँ अपने स्वयं के प्रचार में लगी हुई हैं। हमने ये किया, हम ये कर रहे हैं, इसके पहले ऐसा किसी ने नहीं किया, न कर सकेगा ऐसी भावना से तत्त्व को गौण कर कुछ संस्थाओं का आचरण होता है जो उचित नहीं है।

कुछ संस्थाएँ सच में ही तत्त्व प्रचार में लगी हुई हैं, कुछ विद्वान व श्रेष्ठी भी निरपेक्ष भाव से केवल और केवल जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिए अपना समय, श्रम व धन लगा रहे हैं

Created by Universal Document Converter

उन सभी के प्रति हम सभी को कृतज्ञ होना चाहिए। यदि ये संस्थाएँ व विद्वान न हों तो सत्य धर्म क्या है? बतलाने वाला लोक में कोई न होगा। समाज को ऐसी संस्थाओं का तन-मन-धन से सहयोग करना चाहिए।''

''सत्य धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है भाईसाहब?'' फोन के स्पीकर पर बात सुनकर स्नेहा ने पूछा।

''मुझसे क्या पूछती है, पंडित तो घर में है उससे सुन लेना।''

''भाई साहब! उनसे तो रोज ही सुनते हैं, आज सौभाग्य से आप से बात हो रही है तो आप ही बताइये।'' स्नेहा ने आग्रह पूर्वक कहा।

हँसमुखभाई साहब स्नेहा का आग्रह नहीं टाल सके - ''सत् स्वभावी आत्मा के आश्रय से प्रकट होने वाली वीतराग परिणति ही सत्य धर्म है। यही संवर तत्त्व है, धर्म है, सुख और मुक्ति का कारण है।''

''सत्य वचन को भी सत्य धर्म कहा है।'' स्नेहा ने पूछा।

''अरे भैया! कहा तो गया है पर वह तो व्यवहार से कहा है। पर सच में तो बड़े-बड़े लोग भी सत्य बोलना ही सत्य धर्म है - ऐसा मानकर जो देखा, सुना सो कह दिया बस इसे ही सत्य धर्म हो गया ऐसा समझते हैं।'' पर भैया! पूजनकार ने तो कहा है -

Created by Universal Document Converter

'कठिन वचन मत बोल पर निंदा अरु झूठ तज।'

असत्य वचन तो असत्य हैं ही पर कठोर, दूसरों की निन्दा हेतु कहे गए, दूसरों का अपयश फैलाने, नीचा दिखाने, कलह कराने की भावना से कहे गए सत्य वचन भी जब असत्य हैं, क्योंकि उन सत्य वचनों के कहने के पीछे दुर्भावना है; तब वस्तु स्वरूप तथा वस्तुस्थिति, घटना के विपरीत कथन हो तो असत्य कहलाएंगे ही इसलिए स्नेहा इस जीवन में प्रयास तो यह करना कि सत् स्वभावी निज ज्ञायक का आश्रय करके निश्चय धर्म प्रकट हो और जब तक निश्चय धर्म अर्थात् वीतरागता न हो, तब तक शुद्धात्मा के प्रतिपादक शास्त्रों का अभ्यास करना, आगमानुकूल तत्त्व का प्रतिपादन करना, कभी भी मान बढ़ाई व अहंकार में जिन वचनों के प्रतिकूल नहीं बोलना अन्यथा भविष्य में बोलने योग्य पर्याय की भी प्राप्ति नहीं होगी।

"और हाँ! इस बात का भी ध्यान रखना कि भले अपने साथ अपनी पर्यायगत योग्यता और कर्मोदय के निमित्त से अपमान/ असुविधा प्राप्त हो रही हो, पर जिनके द्वारा प्राप्त हो रही है सच में वे निमित्त मात्र हैं – ऐसा समझकर उनके प्रति भी कषाय भाव नहीं रखना, ऐसा काम नहीं करना जिससे उनका या संस्था का अपयश हो।"

हँसमुख भाई साहब सच में ही विलक्षण हैं वे संस्था के

Created by Universal Document Converter

कार्यभार से मुक्त होकर जिनागम के अभ्यास में सन्नद्ध हो गए हैं और भरपूर आनन्द ले रहे हैं। इस प्रकार की व्यक्तिगत परिस्थितिजन्य चर्चा तो कभी पारस्परिक प्रासंगिक रूप से ही होती है। वे तो ये सब चर्चा करने के बाद भी हँसते हुए यही कहते हैं कि यदि मुझे इस तरह मुक्त न किया गया होता या वातावरण देखकर मैं स्वयं मुक्त न हुआ होता तो अभी मैं शास्त्र की गहराइयों में गोता न लगा पाता अतः जो कुछ हुआ अच्छा हुआ।

ये बात सत्य होते हुए भी रिटायर्ड होने और रिटायरमेंट लेने योग्य वातावरण बनने पर रिटायर्ड होने में बहुत बड़ा अन्तर है, वही अन्तर युवराज के चित्त को चुभता है, जो समय-समय पर मानसिक रूप से भी विचलित कर देता है।

भाईसाहब का अध्ययन हेतु समर्पण देखकर तो हम सभी को आनन्द होता है। युवराज समय-समय पर उनसे चर्चा भी करता है।

एक बार उन्होंने कहा "देखो राजू! इस जीवन में कम से कम सम्यग्दर्शन तो होना ही चाहिए।"

युवराज ने कहा "जी भाईसाहब! मैं ही क्या सभी आत्मार्थी इसी भावना से तत्त्व विचार व प्रचार में लगे हुए हैं कि **हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे तो सफल बने मानव जीवन।**"

Created by Universal Document Converter

"ये बात तो सही कह रहे हो कि सम्यग्दर्शन प्राप्ति की सभी को भावना है, पर सच में जो पुरुषार्थ होना चाहिए, जो विशुद्धि होना चाहिए वह दिखाई नहीं देती, इसलिए मात्र भावना व कुछ प्रवचन सुन लेने मात्र से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

"भाईसाहब! हम अभक्ष्य सेवन नहीं करते, योग्य आजीविका करते हैं, प्रतिदिन मन्दिर जाते हैं, दौड़-दौड़ कर शिविरों में जाकर प्रवचन सुनते हैं, अभी तो ऑनलाइन भी अनेक प्रवचन दिन भर में सुन लेते हैं फिर और क्या करना चाहिए?" युवराज ने मजाक के लहजे में कहा।

"लोग मन्दिर जाते हैं पर दर्शन किसके और क्यों करते हैं? इसका निर्णय नहीं है। अभी तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का भी सच्चा निर्णय नहीं है। कुल अपेक्षा व परम्परा से मानने वाले बहुत हैं, तत्त्व सुनने वाले बहुत हैं पर विचार करने वाले बहुत ही कम हैं।

तत्त्व विचार के साथ चलने वाली विशुद्धि तो गायब ही हो रही है, पानी छानकर काम नहीं लेते, अहिंसक आचार-विचार नहीं हैं, व्यापार, परिवार, समाज में कुटिलता है, धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड व प्रदर्शन बढ़ रहा है, घर की रसोई से यत्नाचार, विवेक, अहिंसा गायब हो रही है, सभी रसना इन्द्रिय के लोभी

Created by Universal Document Converter

होकर जब जो चाहे खा रहे हैं, गृहस्थी के कार्य झाड़ू लगाने, बर्तन-कपड़े साफ करने, मन्दिर आने-जाने, पूजन सामग्री तैयार करने, मन्दिर-स्वाध्याय भवनों के निर्माण करने व उनके उपयोग करने में भी विवेक व यत्नाचार दिखाई ही नहीं देता केवल भवन बनाकर पंचकल्याणक करो, पंचकल्याणकों में दान के पैसे अविवेक पूर्वक प्रदर्शन के लिए खर्च करो भले ही इन आयोजनों में असंख्य जीवों की भी हिंसा हो, मान का पोषण हो, ईर्ष्या व प्रतिस्पर्धा हो, बस सब लगे हुए हैं सम्यग्दर्शन के कारणों के निर्माण में और करते जा रहे हैं मिथ्यादर्शन का पोषण।''

''अरे भाई साहब! आप तो संयम धर्म की बात करने लगे।'' युवराज ने कहा।

''अच्छा तू प्रवचनकार होकर मुझसे मजाक कर रहा है। ये संयम धर्म नहीं है, संयम धर्म तो सम्यग्दर्शन पूर्वक होने वाली चारित्र गुण की निर्मल वीतराग परिणति है। मैं तो सम्यग्दर्शन के पूर्व होने वाली विशुद्धि की बात कर रहा हूँ। संयम धर्म विशुद्धि से बहुत अलग और ऊँचा है।''

''आत्म स्वभाव की श्रद्धा ज्ञानपूर्वक शुभाशुभ इच्छाओं को रोक कर आत्मा में एकाग्र होना ही परमार्थ अर्थात् निश्चय से उत्तम संयम धर्म है।''

जब वीतराग न रह सके तब सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अशुभ

Created by Universal Document Converter

राग को छोड़कर, छह काय के जीवों की रक्षा एवं पंचेन्द्रिय व मन की अमर्यादित प्रवृत्ति को मर्यादित करने का शुभ राग होता है उसे व्यवहार संयम कहते हैं।

वास्तव में प्रचुर स्वसंवेदी दिगम्बर मुनिराज जिनका चित्त दया से भीगा हुआ है वे ही उत्तम संयम धर्म के धारक हैं।

जो गृहस्थ, मुनिराजों के भक्त हैं, मुनि बनकर मुक्तिमार्ग पर चलने के इच्छुक हैं, वे भी यथायोग्य, यथाशक्ति व्यवहार संयम का पालन करते हैं।

जिस तरह बिना ब्रेक की गाड़ी का एक्सीडेंट होना निश्चित है, वैसे ही बिना संयम के गृहस्थ जीवन में पापाचार होना निश्चित है, जिसके फल में दुर्गति होना भी सुनिश्चित है; इसलिए हम सभी को भी यथायोग्य जीवों की रक्षा हेतु यत्नाचार पूर्वक आहार-विहार, व्यापार करना चाहिए एवं विषय-भोगों के पापों से बचने के लिए इन्द्रियों और चंचल मन को भी वश में करना चाहिए।

अभी तो लोग 24 घंटे अपने मुँह को लैटर बॉक्स जैसा खुला रखते हैं, जो चाहे, जब चाहे, खाओ पियो और मस्त रहो - ऐसा लगता है मानो केवल खाने-पीने, घूमने-फिरने, नाच-गाने देखने, पैसा कमाने और पापों में पैसा खर्च करने के लिए ही मनुष्य जन्म मिला है पर यह तो 'नर देह कि यह हार है' यदि

Created by Universal Document Converter

ऐसा ही चलता रहा तो पुनः मनुष्य देह मिलना कठिन हो जाएगा इसीलिए कहा है –

जिह्वे प्रमाणं जानीहि भोजने भाषणेऽपि च।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी।।

हे जीभ! तू भोजन और भाषण में प्रमाण अर्थात् मर्यादा को जान ले, क्योंकि अधिक भोजन और अधिक बोलना शीघ्र ही प्राणों का नाश करने वाला हो सकता है।

इसमें संक्षेप में ही कितना सुन्दर सन्देश दिया है। जिन्हें कब ? क्या ? कितना बोलना ? इसका विवेक नहीं है वे ठुक-पिट कर अपमानित होकर तथा कब ? क्या ? कैसे ? कितना खाना ? इसका जिन्हें विवेक नहीं है वे बीमार पड़कर शीघ्र ही प्राणों का नाश कर लेंगे।

इसी प्रकार प्रसाधन सामग्री का उपयोग करने, रागवर्धक कथाएँ सुनने-सुनाने, विचारने इत्यादि में अपना विवेक जागृत कर यत्नाचार पूर्वक प्रवर्तन करना चाहिए और निश्चय संयम पूर्वक व्यवहार संयम भी जीवन में हो – ऐसी भावना भाना चाहिए।

अरे पण्डित युवराज! आज तुमने तो मेरा पूरा प्रवचन ही करवा दिया, मैं तो भूल ही गया कि मैं किसके सामने बात कर रहा था। हँसते हुए हँसमुखजी ने कहा।

Created by Universal Document Converter

"भाई साहब! आजकल आप केवल पढ़ते सुनते ही हो, आपको श्रोता मिलते ही नहीं है तो मेरे जैसा योग्य श्रोता पकड़ में आ गया तो उसी को आपने प्रवचन सुना दिया।" युवराज ने भी हँसते हुए कहा।

"हाँ! पर एक श्रोता भी पक्का श्रोता मिला ये अच्छा है। सुभाषितकार ने कहा है न –

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि।।

सैकड़ों मूर्ख पुत्रों से एक गुणवान पुत्र होना श्रेष्ठ है। एक चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है, परन्तु तारों का समूह भी अन्धकार का नाश नहीं कर पाता।

इस तरह राजू! तू तो मेरा योग्य पुत्र के समान भाई है, जो न जाने कितने काम अपनी सोच व अपने बल पर निरपेक्ष भाव से करता जा रहा है। जो काम करने के लिए लोग सोचने से डरते हैं वह भी तू हिम्मत करके प्रारम्भ कर देता है। हम तो देख सुनकर प्रमुदित होते हैं।"

"भाईसाहब! ये सब तो आपका आशीर्वाद है, पर आप स्नेहवश कुछ ज्यादा ही प्रशंसा कर रहे हैं।

भाईसाहब! मैं तो आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जो अभी

Created by Universal Document Converter

आपने व्यवहार संयम कहा है क्या उसे अज्ञान अवस्था में आत्महित की भावना से होने वाली सम्यग्दर्शन के पूर्व की विशुद्धि कह सकते हैं ?''

''मेरी दृष्टि में तो आत्म दर्शन की भावना से उक्त प्रकार का यत्नाचार, सदाचार, विनयाचार वह विशुद्धि ही है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को उत्तम संयम धर्म तो है नहीं पर यही विशुद्धता जब सम्यक्त्व होगा तब व्यवहार संयम नाम प्राप्त कर लेगा।''

''धन्यवाद भाई साहब ! आज आपसे विस्तृत चर्चा सुनकर मजा आ गया। मैं ये सब आदि, अजेय को भी बताऊँगा।''

''मुझे तो यह पता ही है कि तू अकेले तो चैन से भोजन कर ही नहीं सकता, जो मिलेगा उसे दूसरों को कहकर या लिखकर परोसेगा ही। जैसी तेरी इच्छा और जैसी सबकी होनहार होगी काम होगा। अच्छा राजू चलता हूँ, भाभी भोजन तैयार होने की सूचना दे रही है।''

''ठीक है भाईसाहब ! मैं भी भोजन के लिए प्रस्थान करता हूँ।''

प्रसन्नता पूर्वक बात पूर्ण हुई।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

6

दसलक्षण पर्व के पावन प्रसंग पर आत्माराधना यथायोग्य चल रही है, पर्व के अवसर पर संसार, शरीर, भोगों का स्वरूप जानकार इनसे भिन्न ज्ञानानन्दमय निज चैतन्य परमात्मा का स्वरूप जानकर उसमें अहम् बुद्धि का प्रयास/पुरुषार्थ ही सम्यक् पुरुषार्थ है।

पर्याय की क्षणभंगुरता, विभाव की विपरीतता और स्वभाव की सामर्थ्य समझ कर ही आनन्दमय जीवन जिया जा सकता है। यह एक दुखद तथ्य है कि हमें स्वभाव की सामर्थ्य पढ़ने, सुनने, समझने का स्वर्णिम अवसर तो प्राप्त है; पर उसमें अहम् बुद्धि हो इस योग्य सम्यक् पुरुषार्थ नहीं होता। हमें आत्मा की चर्चा अच्छी लगती है पर जिसकी चर्चा की जा रही है, उसमें चर्या हो सके यह पुरुषार्थ नहीं होता?

युवराज सामाजिक संस्थाओं में अपना समय/श्रम देकर कदाचित् परिवार को दुःखी होता भी देख चुका है, फिर भी प्रसन्नतापूर्वक एक जगह से स्थानान्तरित होने पर दूसरी जगह और दूसरी जगह से तीसरी जगह कुछ न कुछ करने का राग वृद्धिंगत होता ही रहता है। मित्रगण समझाते भी हैं कि "भाई! अब शान्ति से विश्राम करो, बड़ी मुश्किल से तो विश्रान्ति मिली है अब क्यों किसी नए प्रपंच में पड़ते हो।"

Created by Universal Document Converter

पर युवराज का मानना है कि "स्वाध्याय के नाम पर प्रमादी हो जाना ठीक नहीं है। यदि स्वाध्याय सामायिक में ही समय बिता सकने कि सामर्थ्य हो तब तो सब प्रचार कार्यों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है, पर आत्मार्थ पोषक इन कार्यों में जब अधिक समय नहीं दे सकते या निरन्तर इनमें उपयोग नहीं लगता तो सामायिक-स्वाध्याय के योग्य वातावरण बनाने, बालकों में संस्कार पहुँचाने का प्रयास क्यों नहीं करना चाहिए? उसे बड़े पण्डितजी साहब का एक वाक्य सदैव स्मरण रहता है 'कर्तृत्व का निषेध है, कर्तव्य का नहीं।' हमें जन जागरण, सामाजिक चेतना, युवा-युवतियों में तत्त्वज्ञान श्रावकाचार के संस्कारों के बीजारोपण करने का प्रयास, कर्तृत्व की भावना के बिना अवश्य ही करते रहना चाहिए।"

दुनिया में इतना अधिक दुराचार फैल रहा है उससे युवा वर्ग को बचाने का एकमात्र माध्यम ये संस्थान ही हैं। सर्वत्र समृद्धि बढ़ रही है, लौकिक शिक्षा व संसाधन बढ़ रहे हैं पर संस्कृति नष्ट हो रही है। संस्कृति का संरक्षण इन संस्थाओं द्वारा ही किया जा सकता है, अतः कुछ अलग ढंग से कार्य करने का स्वप्न लेकर युवराज ने कदम बढ़ाए हैं। उसे पता है समस्याएँ आएँगी, पर कोई न कोई समाधानकर्ता भी मिलेगा। यह भी विश्वास है कार्य होना होगा तो पाँचों समवाय स्वतः मिलेंगे। इस विश्वास के साथ बिना अधिक प्रत्यक्ष जन संपर्क किये, बिना अधिक जगह

Created by Universal Document Converter

हाथ जोड़े मात्र आधुनिक प्रचार माध्यम व्हाट्सएप का अवलम्बन लेकर कदम बढ़ाया है।

युवराज के विद्यार्थी संजय-अमित का फोन आया था। कुशल-क्षेम के बाद सहज ही उन्होंने कहा "भाईसाहब! आप एक के बाद एक कुछ नया करने के लिए सोच भी लेते हो और सौभाग्य से सफलता भी मिल जाती है, इसका क्या कारण है?"

"कार्य सफल होने का वास्तविक कारण तो यह है कि जो कार्य जब जैसे होना हो, वह तब और वैसे ही होता है अन्य नहीं।"

यद्भावी तद्भवत्येव यन्न भावी तन्न भवेत्।
इति निश्चितबुद्धिनां न चिंता बाध्यते क्वचित्।।

जो होना है वह होगा ही, जो नहीं होना वह नहीं ही होगा - ऐसी जिनकी दृढ़ श्रद्धा है, उन्हें कभी भी चिंता नहीं होती।

मैं भी किसी भी काम के बारे में यही सोच-विचार कर प्रारम्भ करता हूँ। अन्य सब भी ऐसा ही कुछ सोचकर करते होंगे, सफलता भी केवल मुझे नहीं बहुतों को मिलती ही है। अच्छे काम सभी सफल होना ही चाहिए; पर अधिकतर लोग ये सोचकर तनाव में आ जाते हैं कि यदि लोगों ने सहयोग नहीं किया और कार्य पूर्ण नहीं हो पाया तो क्या होगा? हमारी इज्जत दाँव पर है आदि।

मैं कभी भी अपनी इज्जत को दाँव पर लगा हुआ नहीं

Created by Universal Document Converter

मानता। मेरी इतनी इज्जत है ही नहीं जो मैं दाँव पर लगा सकूँ ? हम तो जो भी कार्य प्रारम्भ करना चाहते हैं उसके सम्बन्ध में व्हाट्सएप पर पहले दिन से ही सूचित कर देते हैं कि हम ये काम, इस तरीके और इस उद्देश्य से कर रहे हैं यदि समाज को कार्य पसन्द आएगा, समाज का सहयोग मिलेगा तो काम होगा और यदि समाज को कार्य पसन्द नहीं आया या समाज ने सहयोग नहीं किया तो हमें कभी भी पीछे हटने में न संकोच है न कोई समस्या।

इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि भाई चाहे लौकिक कार्य हो या लोकोत्तर सबमें बहुत कुछ तप-त्याग करना होते हैं तब जाकर सफलता मिलती है।

जिस तरह लौकिक मार्ग में विद्यार्थी कक्षा/विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाने के लिए खाना-पीना, खेलना-कूदना, सोना यहाँ तक कि नहाना और सजना-सँवरना सब भूलकर जब, जो, योग्य समय पर भोजन मिले जितना आवश्यक हो उतना ही करता है, बैठे-बैठे या थोड़ा लेट कर नींद लेता है, खड़े होकर, बैठकर अध्ययन करता है और अध्ययन में बाधक नाच-गाना, मित्रों से बातचीत, व्हाट्सएप, फेसबुक आदि का त्याग करके एकाग्रचित होकर पढ़ाई करता है तो सफल होता ही है।

इसी तरह कोई व्यापारी या खिलाड़ी लक्ष्य भ्रष्ट हुए बिना

Created by Universal Document Converter

मात्र अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखकर भोजन-पान, मान-सम्मान, थकान, लौकिक पर्व, पारिवारिक-सामाजिक कार्यक्रम सब पर से दृष्टि हटाकर यहाँ तक कि भोजन भी कार्यसिद्धि के योग्य उदर पूर्ति हेतु लेता है, थकान मिटाने नींद लेता है और व्यापार अथवा खेल के बाधक तत्त्वों का त्याग करता है तो ही व्यापार या खेल में सफलता मिलती है।

लोकोत्तर मार्ग में भी जो जीव आत्मार्थी हैं, वे आत्मस्वरूप के निकट आते हैं, उसमें ही स्थिर होते हैं, बैठते हैं, उसी में केलि करते हैं, रमण करते हैं यही उनका वास्तविक तप है और अपने आत्म स्वभाव को ग्रहण कर आत्म स्वभाव से विरुद्ध जो मोह-राग-द्वेष भाव हैं जो आत्मा को दुःखद हैं, अशुचि हैं, विभाव हैं उनका त्याग करते हैं तो उन्हें सिद्धत्व की प्राप्ति होती है।

जब जीव इस प्रकार मुक्तिमार्ग में अग्रसर होता है तब वह सहज ही सामायिक-स्वाध्याय, ध्यान में जो साधक बने ऐसे आहार का ग्रहण-त्याग करते हैं तो अनशन आदि तप भी उस छात्र की भाँति सहज होते ही हैं। जिसे आत्मिक आनन्द आया उसकी भोजन की रुचि समाप्त हो जाती है, पूर्व संस्कारों के कारण और शरीर के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के वशीभूत भूख की पीड़ा होती भी है तो विशेष नियम पूर्वक, रसों का ध्यान रखे बिना, एक बार, खड़े-खड़े आहार ग्रहण करते हैं ये भी उनके बहिरंग तप हैं। धन्य है ऐसी मुनि दशा।

Created by Universal Document Converter

गृहस्थ भी अपनी भूमिका के योग्य आत्म साधना करता है और आत्म साधना में जो साधक बने ऐसे अनशन आदि तप करते हैं, कषाय भाव कम करते हैं, पुण्य उदय से प्राप्त धन को परोपकार, धर्म प्रचार में नाम, मान की अपेक्षा के बिना लगाते हैं, ज्ञान हो तो औरों को सिखाते हैं तो उन्हें भी लोकोत्तर मार्ग में सफलता मिलती है।

बस बेटा! इसी तरह मुझे भी जो सफलता मिलती दिखती है उसमें वास्तविक कारण तो उस कार्य के होने की स्वयं की योग्यता है। उस कार्य से लाभान्वित होने वालों की भी अपनी योग्यता है, उसमें सहयोग करने वालों की भी अपनी योग्यता है, वह कार्य उस समय होने योग्य है इसलिए होता है तो मैं और अन्य साथी उसमें निमित्त बन जाते हैं। ये बातें केवल कहने के लिए नहीं सच में यही सत्य है।

और जैसे ऊपर उदाहरण दिए हैं वैसे ही यहाँ भी समझना कि "परमार्थ कारण के पोषण करने वाले को कुछ न कुछ बाह्य तप-त्याग भी करना ही होते हैं। जिस तरह मैं भी जो सोचता और करता हूँ वह करने में पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, शारीरिक सुविधा, खान-पान व्यवस्थाओं और अन्य सुविधाएँ, मान-सम्मान छोड़कर तपना पड़ता है। वे तप त्याग दिखें या न दिखें पर उसके बिना किसी को भी सफलता नहीं मिली तो मुझे भी कहाँ से मिल जाएगी?'

Created by Universal Document Converter

'भाई साहब! आपने यह सही कहा कि किसी भी कार्य की जिम्मेदारी को जो लेता है उसे तपना पड़ता है, सुख-सुविधाओं को अनदेखा अर्थात् त्याग करना पड़ता है। आलस-नींद छोड़ना पड़ती है तभी जाकर कार्य सिद्धि होती है। ये सब हमने आपके जीवन में देखा है किस तरह आवश्यकता पड़ने पर कार्यक्रमों में दोपहर को 1.00 बजे 2.00 बजे भी अपने हाथ से भोजन बनाकर किया है। जहाँ अन्य कार्यकर्ता वाहन, भोजन, फोन की सुविधाएँ खोजते-फिरते हैं वहाँ आप उनके बिना भी अपने ही संसाधनों का उपयोग करके लगे रहते हैं। हम ऐसे अनेक स्नातकों को जानते हैं जो अपने श्रीमतीजी की प्रसन्नता व सुविधाओं का ध्यान रखते हुए अपने बच्चों की पढ़ाई का ध्यान रखते हुए केवल एक गृहस्थ बनकर रह गए समाज को उनका कुछ भी लाभ नहीं मिला इसी तरह ऐसे भी अनेक को जानते हैं जिन्होंने या तो धन प्राप्ति के लिए कोचिंग या कोई अन्य सह व्यवसाय कर लिया अथवा ऐसे भी हैं जिन्होंने चाहे समाज सेवा की हो, धर्म प्रचारक रहे हों, पर उनकी दृष्टि अर्थ पर ही रही और आज वे करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक बन गए हैं, पर आपने कभी अन्य किसी से ना अपेक्षा की और ना धन को कहीं मुख्य किया।

हम सभी यह जानते हैं इसीलिए "जब आप कुछ भी कार्य

Created by Universal Document Converter

करना चाहते हैं तब आपके सभी नहीं तो कुछ विद्यार्थियों को तो लगता ही है कि भाईसाहब की कार्यसिद्धि के लिए कुछ न कुछ करना ही चाहिए। जो कुछ कर नहीं पाते वे भी कार्यसिद्धि की शुभकामना तो करते ही हैं और सच तो यह है कि शुभकामना तो क्या उन्हें विश्वास होता है कि आपने कार्य प्रारम्भ किया है तो कार्य तो होकर ही रहेगा।''

''ओ भैया! किसी एक के करने से कुछ नहीं होता। बड़े काम टीम के द्वारा ही होते हैं। आगे भले कोई एक रहे उसी को मंच-माला-माइक मिले, परन्तु ये सभी काम कार्यकर्ताओं, अर्थ सहयोगियों, मार्गदर्शकों, शुभकामनाकर्ताओं सभी के सहज संयोग से ही सम्पन्न होते हैं। इसलिए तुम सब भी हमेशा ध्यान रखना कि तुम भी किसी काम का नेतृत्व करो तो कर्तृत्व का अहंकार नहीं करना, बल्कि काम स्वयं करना और श्रेय अपने साथियों को देना।

तुम सभी का हम पर विश्वास है, अन्य अनेक साधर्मियों का विश्वास है अतः हमें भी विश्वास है कि यह कार्य भी होगा ही, कुछ अलग ढंग से होगा, समाज को सोचने का अवसर देगा कि ऐसे भी कार्य होता है, हो सकता है और होना चाहिए।''

युवराज ने मुस्कुराते हुए चर्चा का समापन किया।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

7

कल्याणपुर ही नहीं देश के कोने–कोने में युवा वर्ग में बढ़ती व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा, आधुनिक भोगवादी संस्कृति का विस्तार, युवा–युवतियों में शील के प्रति बढ़ती उदासीनता देखकर युवराज चिन्तित हो जाता था। इस बढ़ते हुए दुष्प्रभाव को कैसे रोका या काम किया जा सकता है या कम से कम जैन परिवारों को इस सम्बन्ध में कैसे जागरूक किया जा सकता है? इस पर मित्र मंडली में चर्चा भी किया करता था।

युवराज जानता था कि पंचम काल चल रहा है, जिसे कोई भी चतुर्थ काल की ओर नहीं ले जा सकता। यह अवसर्पिणी काल है, जिसमें लौकिक समृद्धि/सम्पत्ति/संसाधन बढ़ेंगे, पर संस्कृति और संस्कारों का ह्रास ही होगा। भवन उज्ज्वल–धवल विशाल होंगे, पर भावनाएँ कालिमा युक्त संकुचित होंगी। इस काल में धर्मात्मा भी धर्म से नहीं, धन से माना जाएगा। यश, प्रतिष्ठा सदाचार से नहीं, धन से होगी। विद्वत्ता लक्ष्मी के चरण वंदन करने लगेगी। परिग्रह का त्याग करके त्यागी वर्ग पुनः उसी परिग्रह का ग्रहण करने लगेंगे, मानो कोई वमन को पुनः ग्रहण करने का निंद्य कार्य करने लगे; फिर भी सूर्यास्त होने पर पुनः सूर्योदय होने तक परिजन अन्धकार में भयभीत न हों,

Created by Universal Document Converter

योग्य व आवश्यक कार्य किये जा सकें एतदर्थ अभिभावक दीप प्रज्वलित करने का राग/प्रयास नहीं छोड़ सकते। इसी प्रकार युवराज भी अपनी सामर्थ्य की हीनता जानते हुए भी जगह-जगह ज्ञानदीप प्रज्वलित हों - ऐसी भावना व प्रेरणा निरन्तर करता था, यथाशक्ति किशोर व युवा वर्ग के लिए गुरुकुल खुलवाकर प्रयत्नशील था।

दसलाक्षणी पर्व का पावन प्रसंग चल रहा है, सभी के मन में उमड़-घुमड़कर क्षमा आदि दस धर्मों का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक स्वरूप आता रहता था, उनका स्वरूप विचार कर ही आत्मार्थी का हृदय गा उठता है 'भव आताप निवार, दसलक्षण वन्दों सदा।' इस अवसर पर सहज ही युवराज ने आदि से कहा 'भाई! चाहे पंचम काल हो या कोई अन्य काल, यदि जीवन यात्रा में जिनवचनामृतरूपी पाथेय साथ में हो तो किस बात का भय और यदि साथ नहीं है पाथेय, तो कैसे रहेंगे अभय?' जिनवाणी में धर्म के दसलक्षणों का हृदयग्राही विवेचन है। ये दसलक्षण सार्वजनिक/सर्वकालिक/सार्वभौमिक हैं, निश्चय-व्यवहार की सन्धि पूर्वक यदि इनको जीवन में लेकर चला जावे तो न केवल अपना बल्कि अपने निकटतम जीवों का जीवन भी शान्ति/मंगलमय होगा।

''हर जीव क्रोध आदि कषाय भावों से दु:खी होता है और

Created by Universal Document Converter

क्षमा आदि भावों को प्राप्त कर ही सुखी होता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, यह पक्षपात या सम्प्रदाय नहीं है। शाश्वत सत्य भी जब हम अपनी अज्ञानता से किसी धर्म, ग्रंथ या वक्ता से जोड़ देते हैं तो वह भी एक सीमित दायरे में ही रह जाता है। इसी तरह का दुर्भाव धर्म के दसलक्षणों के प्रति हुआ है, इन्हें केवल जैनों का और उनमें भी दिगम्बर जैनों का मान लिया गया है जिससे इन अमृतमयी दस लक्षणों को सभी स्वीकार नहीं कर पाते।'' आदि ने कहा।

युवराज ने आदि से चर्चा करते हुए कहा कि ''वर्तमान की परिस्थितियों को देखते हैं तो चारों ओर दिखता है कि लोग रात-दिन परिग्रह जोड़ने में लगे हुए हैं। पहले परिवार का सामूहिक परिग्रह हुआ करता था, पर आज तो सब अपना बैंक बैलेंस, अपना बंगला, अपना फ्लैट बनाकर उन सब में ममत्व स्थापित कर स्वार्थी बन रहे हैं और दूसरी ओर टेलीविजन, इंटरनेट, व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम आदि पर शील विरुद्ध सामग्री परोसी जा रही है, जिसके कारण किशोर और युवा भटक कर अपना चारित्रिक पतन तो कर ही रहे हैं, लौकिक उन्नति से भी दूर हो रहे हैं तब लोकोत्तर उन्नति की तो बात ही क्या की जाए।

अज्ञानी जीव परिग्रह और अब्रह्म की आग में झुलसता रहता

Created by Universal Document Converter

है। परद्रव्यों के प्रति मोह-ममत्व भाव करके आकुलित होता है जबकि सच में परमाणु मात्र पर भी जीव का अधिकार नहीं है, फिर भी जिस भी पदार्थ का संयोग होता है मोही जीव उसे ही ये सब मेरा है मानकर बैठे जाता है और जो नहीं मिला है उसकी अभिलाषा में पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय का विवेक किए बिना रात-दिन आकुलित होकर भागता-फिरता है। कवि ने सावधान किया है -

जा लक्ष्मी के काज तो खोवत है निजधर्म।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत भर्म।।

जिस धन को प्राप्त करने के लिए जिन दर्शन-पूजन, स्वाध्याय, यात्रा, शिविर सब छोड़ रहे हैं वह धन कभी भी साथ जाने वाला नहीं है। इस धन परिग्रह के आने-जाने और रहने पर सदा ही आकुलता ही होती है, कषाय भाव ही होता है। एक पैसा साथ लाये नहीं, साथ ले जा सकते नहीं, बस पुण्योदय से बीच में जो कुछ मिला उस पर स्वामित्व-ममत्व करके 24 घंटे पाप भाव ही करता है।

यह भी एक विडम्बना है कि धनादि संयोगों के मिलने में पुण्य कर्म का उदय कारण कहलाता है अर्थात् रुपया-पैसा, मकान-दुकान, सोना-चाँदी, नौकर-चाकर, गाड़ी आदि पुण्योदय से मिलते हैं, कहलाते परिग्रह हैं; जो कि पाप है और इस सब

Created by Universal Document Converter

परिग्रह को देख-भोगकर भी पाप का ही बंध होता है, इस तरह पुण्य व्यय करके, पाप की आय होती है, इसलिए ज्ञानी/समझदार/विचारशील पर पदार्थ में ममत्व नहीं करते, यदि उनका सहज संयोग-वियोग हो जाए तो हर्ष-विषाद भी नहीं करते।

सच में पुण्योदय से तो हमें जिन धर्म, देव-शास्त्र-गुरु का समागम, साधर्मियों का समागम, धर्म आराधना करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। ये सब समागम ही हमें भव से पार कराने वाले हैं, ये समागम पापों का ही नहीं, पुण्य का भी नाश करके शिवपुरी पहुँचाने वाले हैं; पर अज्ञानता के जोर में इन सबका महत्त्व न आकर पद-पैसा-प्रतिष्ठा की प्राप्ति में ही जीव पुण्योदय/भाग्य/किस्मत समझ रहा है। सच में तो जिन शासन बिना इन सबका प्राप्त होना संसार परिभ्रमण का ही कारण है, जिन्हें जिन शासन प्राप्त हुआ है यदि उन्हें भी ये सब संयोग मिलते हैं तो वे उनका भी सदुपयोग करते हुए आत्मार्थ का पोषण करते हैं और तत्त्व प्रभावना करते हैं, इसीलिए आचार्यदेव कहते हैं -

जिनधर्म विनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितः।।

नहीं चाहता जैन धर्म से रहित चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैन धर्म से सहित दरिद्री भी होना।।

सच में तो मेरा वास्तविक स्वरूप बतलाते हुए आचार्य

Created by Universal Document Converter

कुन्दकुन्द देव ने महान उपकार किया है, वे कहते हैं –

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेंत्तपि।।

"मैं एक, दर्शन-ज्ञानमयी, शुद्ध, सदा अरूपी परम पदार्थ हूँ। मेरा मुझ शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त बाहर में तन-मन-धन, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म, परिजन-पुरजन किसी से भी कोई सम्बन्ध नहीं है, ये मेरे नहीं हैं, मैं इनका नहीं हूँ मैं अकिंचन होते हुए भी अपने अनन्त गुणों से मालामाल हूँ।"

आदि ने युवराज के परिग्रह एवं आकिंचन्य धर्म के सम्बन्ध में उक्त विचारों का समर्थन करते हुए कहा कि "तुम सच कह रहे हो, जीव अपना स्वरूप एवं अपनी संपदा को भूलकर अपने को दीन-हीन मानकर ही बाहर के पदार्थ का ग्रहण करना चाहता है, परन्तु जीव तो त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति का धारक है वह किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं कर सकता है और जब ग्रहण नहीं कर सकता तो त्याग क्या करे? सच्चाई यह भी है कि किसी भी पदार्थ को ग्रहण करने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि जब मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, सब हैं अपने में स्वयं पूर्ण तो फिर कौन? किसका? क्यों परिग्रहण करे? यह सत्य समझना ही सुख प्राप्ति और निर्भार होने का उपाय है।

युवराज तुमने अभी प्रारम्भ में कहा कि शील विरुद्ध वातावरण

Created by Universal Document Converter

बन रहा है, यह सामाजिक कटु सत्य है जो निरन्तर बढ़ता जा रहा है, जबकि कहा गया है 'धन गया कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया कुछ गया, लेकिन चारित्र गया तो सब कुछ गया' परन्तु आज की युवा पीढ़ी चरित्र को भूलकर केवल चित्रों पर मोहित हो रही है, अपने कैरेक्टर का सर्वनाश करके भी कैरियर के नाम पर जीवन बर्बाद कर रही है।"

आदि तुम बिल्कुल सही कह रहे हो। वर्तमान की युवा पीढ़ी के चाल-चलन, पहनावे को देखकर तो प्रत्येक प्रौढ़ विचारक का मन चिन्ता से भर जाता है। एक बार चर्चा करते हुए मैंने स्नेहा से मजाक में कहा था "स्नेहा! देखो तो महँगाई कितनी बढ़ गई है कि आजकल बच्चे अपनी साइज के सही कपड़े भी नहीं खरीद पा रहे हैं। बेचारे छोटे-छोटे, फटे-पुराने, ऐड़े-टेड़े कपड़ों को पहनकर गुजारा कर रहे हैं।" इस बात को लेकर हम दोनों ही दुखद हँसी-हँसे थे।

यह परम सत्य है कि ब्रह्म में चरण/विचरण/रमण/लीनता करने का नाम उत्तम ब्रह्मचर्य है जो साक्षात् मुक्ति का कारण है, आनन्द रूप है इसीलिए तो कवि ने कहा '**आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य धर्म दस सार हैं।**' हमें समझना चाहिए

इनके बिना धन-धाम बिल्कुल असार है।
जीव को न क्षण भर इसका विचार है।।

Created by Universal Document Converter

इसी के फल में तो घूम रहा संसार है।
आकिंचन्य ब्रह्मचर्य धर्म दस सार है।।

मनुष्य जन्म एवं जैन धर्म पाने की सार्थकता '**ब्रह्म भाव अंर्तलखो**' में ही है। बाहर में राग-रंग, चकाचौंध, आकुलता है और अंतरंग में ज्ञान-दर्शन स्वरूपी अनादि-अनंत बह्म/आत्मा है, जो शरीर में है, पर शरीर नहीं है। इन्द्रियों के संयोग में है, पर जो इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता और सच में इन्द्रियों द्वारा जानता भी नहीं है। जानने का मूल करण/साधन ज्ञान आत्मा स्वयं है। स्वयं के द्वारा स्वयं को जानना है। अपने उपयोग/ज्ञान/बुद्धि का बाहर भटकाना अबह्म है और ज्ञान को ज्ञायक में लगाना ही ब्रह्मचर्य है; अब्रह्म कुशील है, दुःखद है, निंदनीय है कर्मबन्ध का कारण है; ब्रह्मचर्य सुशील, सुखद, अभिनन्दनीय और मुक्ति का कारण है।

यह परम सत्य इन बच्चों को कैसे समझ में आएगा ? जिनके जीवन में शालीनता/सात्त्विकता/सादगी नहीं है, अपनी निर्दोष संस्कृति के प्रति लगाव नहीं है; बल्कि तिरस्कार है। जो वैलेंटाइन डे, फ्रेंडशिप डे और तरह-तरह की पार्टियों के नाम पर मन-वचन-काय को कुशील युक्त कर रहे हैं, जिसके कारण वे अपना जीवन तो बर्बाद कर ही लेते हैं, अन्य के भी चारित्रिक पतन में कारण बनते हैं। द्यानतरायजी ने कहा है '**शील सदा दृढ़ जो पालै, सो औरन की आपद टालें।**'

Created by Universal Document Converter

जो स्त्री-पुरुष के भेद को स्वीकार करते हुए, भले ही रिश्ते में वे कोई भी हों पर मर्यादा बनाकर रखते हैं, हाथ मिलाना, गले लगाना, अश्लील इशारे करना, अश्लील चलचित्र देखना, माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके दोस्तों के साथ घूमना, नाचना-गाना, होटल में जाना आदि कार्य नहीं करते हैं, जो आगमानुसार व्यवहार शील का पालन करते हैं, वे अपना जीवन तो शान्तिमय करते ही हैं, साथ ही अन्य को भी आपत्तियों से बचाते हैं।

"पर इस पंचम काल के जोर में माता-पिता स्वयं अपने युवा पुत्र-पुत्री को व्यवहार शील से विरुद्ध खान-पान, परिधान, पार्टी, स्वतन्त्रता उन्मुक्तता के लिए प्रेरित कर रहे हैं। सिगरेट-शराब पीना, हर लड़के-लड़की का विपरीत लिंगी मित्र (ब्वाय-फ्रेंड, गर्लफ्रेंड) होना प्रगति का सूचक बनता जा रहा है। धर्माचरण से दूर होने के कारण लिव इन रिलेशन, विधर्मी वैवाहिक सम्बन्ध हो रहे हैं अब ऐसे घरों में श्रावकाचार का पालन किया जाना भी सम्भव प्रतीत नहीं होता तब '**ब्रह्म भाव अंर्तलखो**' की बात को कौन सुने ? जब सुनने योग्य ही नहीं हैं तो पालन करना तो दुःस्वप्न के समान है।"

"भाई प्रिंस मैं तुम्हारे विचारों से शत-प्रतिशत सहमत हूँ। मुझे तो अन्दर से लग रहा है कि यदि युवा वर्ग को आकिंचन्य/ब्रह्मचर्य ही नहीं, क्षमा-मार्दव आदि दसधर्म, शान्ति, समता,

Created by Universal Document Converter

सरलता, समन्वय का मार्ग यदि कहीं प्राप्त हो सकता है तो वह केवल और केवल जिन धर्म प्रचारक संस्थानों के माध्यम ही हो सकता है। इसलिए हर विधा, हर वर्ग को ध्यान में रखते हुए सशुल्क/निःशुल्क जैसे भी हो जैन विद्यालय/महाविद्यालय खुलना चाहिए। हँसमुख भाई साहब, तुम स्वयं, मैं, अजय, महेश सब सामाजिक छात्रावास में रहकर ही अध्ययन करके बाहर निकले हैं हमारे विचारों में ही नहीं आचरण में भी बदलाव का कारण अपना संस्थान और पण्डित आदेशकुमारजी ही हैं।''

''पूर्णतः सत्य कथन है। भाई आदि हमें जो वहाँ तत्त्वज्ञान मिला उसके कारण ही जीवन में अनुकूलता-प्रतिकूलताएँ आने, यश-अपयश प्राप्त होने, लाभ-हानि होने पर कषाय भाव तो कदाचित् होता है, समाज/परिवार का जो भी सदस्य उक्त कार्यों में निमित्त दिखता है उनके प्रति राग-द्वेष कषाय भी होता है; परन्तु देव-शास्त्र-गुरु का अविनय या तत्त्व विरुद्ध निरूपण या किसी की जीव नुकसान करके या अति दीर्घकालीन कषाय भाव को सुरक्षित रख छलपूर्ण कार्य करके क्षति पहुँचाई जाए - ऐसी अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी तीव्र कषाय नहीं होती है। कषाय होती भी है तो उन निमित्तों से दूर हो जाने, जिस कार्य से हटना पड़ा या अपयश हुआ है उस कार्य को अन्यत्र सावधानी रखते हुए पुनः करने या फिर शान्ति से रहते हुए देव-शास्त्र-गुरु की आराधना पूर्वक

Created by Universal Document Converter

आगम और आत्म साधना बढ़ाने सम्बन्धी ही होती है, जो मन्द से मन्दतर, मन्दतम होकर भविष्य में समाप्त हो जाएगी।''

ये सब आत्महित की भावना से ही निरन्तर स्वाध्याय करते रहने का सुफल है। इसलिए जिनवचनामृत से प्राप्त धर्म के दस-लक्षण जो कि शान्ति प्रदाता हैं का मात्र दसलक्षण पर्व में ही नहीं, बल्कि हर समय और विशेष कर क्रोध आदि भाव होने के समय स्वरूप/लाभ का विचार होना चाहिए। दसलक्षण धर्म अशान्ति को मिटाने की अचूक दवा है। सच ही कहा है शान्ति से जीवन जीने की कला का नाम जैन धर्म है। धर्म परिभाषा नहीं प्रयोग है। हमारा जीवन एक प्रयोगशाला बने, हमारी जीवन यात्रा, विकार विजय यात्रा बने तो जीवन सुखद होगा।

❀❀❀

मैं
न हटा हूँ
न हटाया गया हूँ
मैं तो स्वयं आगे बढ़ा हूँ
और बढ़ाया गया हूँ
पहले जिले से संभाग की ओर
अब संभाग से प्रदेश की राजधानी की ओर
बढ़ने-बढ़ाने का यह दौर रुकेगा नहीं
अभी तो चलता रहेगा
लौकिक राजधानियों से
शिव राजधानी की ओर

Created by Universal Document Converter

8

आज 20 सितंबर 2024 है। दिनांक के अनुसार आज युवराज के 60 बसन्त पूर्ण हो रहे हैं। जब से जन्मदिन मनाने का जंजाल वृद्धिंगत हुआ है, तब से आज युवराज प्रथम बार ही सापेक्ष सहजता एवं पुरुषार्थ से अपनी जन्मभूमि सिद्धपुरी में आया है। यहाँ आकर कुछ विशिष्ट विचारधारा के प्रवाह में बहकर कुछ निर्णय करने का अभिप्राय लेकर विचारशील युवराज सिद्धपुरी आया हुआ है।

सिद्धपुरी जहाँ से उपसर्गजयी मुनिराजों ने अष्ट कर्मों का नाश कर सिद्धत्व की प्राप्ति की है। उस भूमि पर जन्म होना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना वैसे तो कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि यहाँ तो हजारों मनुष्य रहते हैं, नियमित जन्म-मरण होते हैं, परन्तु महत्त्वपूर्ण है यहाँ जन्म लेकर अपने पूज्य माता-पिता से उन संस्कारों की प्राप्ति होना जो कि शाश्वत सिद्धपुरी की ओर प्रस्थान करने का आधार है। सिद्धपुरी में जन्म लेना आनन्दकारी नहीं है, बल्कि जन्म-मरण का अभाव करने वाली विद्या का प्राप्त होना आनन्दमयी है।

जैसे माता सुस्वादु भोजन तो तैयार कर सकती है, पर भोजन का आनन्द तो बच्चों को स्वयं रसास्वादन करने पर ही

Created by Universal Document Converter

मिलेगा। उसी प्रकार जन्मभूमि, माता-पिता, गुरु पण्डित आदेश-कुमारजी आदि के निमित्त से माँ जिनवाणी का पाथेय तो प्राप्त हुआ है, अब मुझे स्वयं उसका रसास्वादन/अनुभव करना है तभी स्वाद आएगा। निजामृत का स्वाद लिए बिना जिन वचनामृत मिलना निरर्थक हो जाएगा। सर्व प्रकार से अवसर आ गया है। राजकीय सेवा से निवृत्ति होने पर स्व में प्रवृत्ति के लिए अवसर मिलेगा, यदि अवसर चूका तो पछताना ही हाथ लगेगा।

युवराज गम्भीरतापूर्वक भजन की पंक्तियों को गुनगुनाते हुए पर्वत पर विराजमान जिन भगवन्तों के दर्शनार्थ जा रहा है -

यदि अवसर चूका तो भव-भव पछतायेगा।
फिर काल अनन्त अरे दुःख का घन छायेगा।।
यह नरभव कठिन महा किस गति में जायेगा ?
यदि नरभव पाया तो जिन श्रुत नहीं पाएगा।।
अनगिनती जन्मों में, अनगिनती कल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विकल्पों में।।

प्रभु! मुझे यह नर जन्म उस भूमि पर मिला है, जहाँ आपका भ्रमण हुआ और परिभ्रमण का अभाव हुआ। आपकी चरण रज से यह भूमि पावन हुई है, इस भूमि पर जन्म लेकर मैं अपने आप को धन्य मानता हूँ; पर जन्म लेने में धन्यता कैसी? प्रभु! जन्म तो रोग है, दुःखद है। जगत में जन्म लेना ज्ञानियों ने कलंक के

Created by Universal Document Converter

समान कहा है और इस पंचम काल में जन्म लेना तो मेरे अपराधों की गम्भीरता को ही बता रहा है। निश्चित ही पूर्व में आत्म विराधना की होगी, देव-शास्त्र-गुरु की अविनय की होगी इसीलिए ऐसे क्षेत्र व काल में जन्म लेना पड़ा जहाँ साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवन्तों का विरह है।

आप जब इस भूमि पर पधारे थे तब आपकी आहार-विहार चर्या भी यहाँ हुई होगी, भव्यों को उपदेशामृत भी मिला होगा और आपको शाश्वत सिद्धायतन सुखधाम में जाते हुए भी देखा होगा। प्रभु मेरा जन्म उस समय क्यों नहीं हुआ? मैं भी उस समय सिद्धपुरी में जन्म लेकर आपके दर्शन पाकर, उपदेशामृत पीकर, आप जैसे रत्नत्रय को जीकर इस भूमि को ही अपनी निर्वाण भूमि बना लेता तो कितना अच्छा होता?

पर क्या पता उस समय भी रहा होऊँ? मेरी अज्ञता और प्रमाद का भी ओर-छोर नहीं है। उस समय भी आप जैसे सूर्य को देखकर भी मुझ मन्दबुद्धि का कमल न खिला हो, सूर्योदय होने पर भी आँखें बन्द कर आलस में पड़े रहने पर कुछ भी तो दृष्टिगोचर नहीं होता है। क्या पता उस समय अन्धविश्वासों में उलझ कर, विषयासक्त होकर, पद-पैसा-प्रतिष्ठा की दौड़ का घोड़ा बनकर दौड़ता रहा होऊँ और आपके पथ पर फिर चलूँगा, अवश्य चलूँगा, ये काम करके चलूँगा के झूठे वादे अपने से किए हों........।

Created by Universal Document Converter

लगता तो ऐसा ही है। आज भी प्रभु अनेक वादे, दिलासाएँ आपके पथ पर त्वरा से बढ़ने की करता हूँ; परन्तु किसी न किसी मोह में फँस कर अटक जाता हूँ सच ही कहा है 'अटकने के स्थान बहुत हैं।' अनेक जीव व्यापार-परिवार में अटक कर, तो मैं तत्त्व प्रचार की भावना में अटक कर लक्ष्य बिन्दु से अभी तक दूर ही हूँ। प्रभु! आज आपकी भूमि पर आकर आपके पुरुषार्थ का स्मरण मात्र भी मुझ में ऊर्जा भर रहा है। आप मेरे आदर्श हो, पूज्य हो, अनुकरणीय हो, आराध्य हो। जब आप प्रतिकूलताओं का लक्ष्य छोड़कर निजात्मा में केलि कर सकते हैं तो मैं भी पुरुषार्थी बनूँगा, प्रमादी नहीं रहूँगा। अपने जीवन का शेष भाग स्व-पर हित में ही समर्पित करूँगा, धन पद के लिए नहीं।

युवराज विचार मुद्रा में प्रभु के समक्ष शान्त चित्त होकर बैठा है। प्रभु की शान्त मुद्रा को निहारते हुए दृष्टि हटाने का मन नहीं कर रहा है। इतनी शान्ति, निरपेक्षता, निराकुलता अन्यत्र कहाँ? जिनकी मूर्ति ऐसी है वह मूर्तिमान कैसा होगा? बाहर से तो ऐसा ही होगा। वीतराग-वीतराग, निर्लिप्त। न भक्तों के प्रति राग, न अभक्तों के प्रति द्वेष। न अपेक्षा, न उपेक्षा। बस नाशाग्र दृष्टि से केवल और केवल अपने को निहारते हुए। प्रभु! क्या अपना रूप इतना मनहर है? इतना आकर्षक, दर्शनीय आनन्दमय है? जिसे निहारते हुए आप ऐसे तृप्त हुए हैं कि बाहर आने की आवश्यकता ही नहीं रही। अहा!

Created by Universal Document Converter

देखा जब अपने अन्तर को, कुछ और नहीं भगवान हूँ मैं।
पर्याय ही दीन-हीन पामर, अन्तर से वैभववान हूँ मैं।।

वाह! प्रभु वाह! अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख आदि अनन्त गुणों का भण्डार, शाश्वतधाम को पाकर ही आपको सर्व अर्थ सिद्धि हुई है, अब आपको अन्य परिग्रह से क्या काम? पूजा, प्रशंसा, भक्तों से क्या प्रयोजन?

प्रभु! एक बार मुझ पामर पर भी तो कृपा दृष्टि डालो। एक बार तो मेरी ओर निहारो। एक बार मुझे भी अपना जैसा बनने का मार्ग बताओ। इस अधम का उद्धार करो। प्रभु! मैं तो प्रतिदिन आपके दर्शन करने मन्दिर आता हूँ, पूजन करता हूँ, आपके द्वारा प्रतिपादित तत्त्व की चर्चा करता हूँ; पर आप जैसी शान्ति, निराकुलता का अनुभव मुझे क्यों नहीं होता? मुझे शान्ति का अनुभव होगा या नहीं होगा? यदि नहीं हुआ तो यह जीवन केवल और केवल इस जड़-तन को चमकाने के निरर्थक प्रयास में बर्बाद हो जाएगा। प्रभु करुणा कर एक बार तो मेरी ओर निहारो। मुझे आप कृपया मुक्ति सन्देश प्रदान करो।

अहो! आपका मूक सन्देश अब मुझे समझ आ रहा है। मैं मन्दिर आया, पर देखा आप तो अन्दर गए हैं। मैं फिर घर गया। सुबह फिर मन्दिर आया, देखा तो पाया कि आप अन्दर ही हैं। अरे! मैं घर से मन्दिर, मन्दिर से घर की यात्रा कर रहा था; पर

Created by Universal Document Converter

मुझे भी मन्दिर जाकर अन्दर जाने का सन्देश आप प्रतिदिन दे रहे हैं ये मैं समझ ही नहीं पाया। अब समझ आ गया 'प्रभो! आपने एक ज्ञायक बताया' और मैं अपने आपको गायक, व्यवस्थापक, संचालक मानता रहा, इसीलिए 'भूल कर अपना घर, जाने किन-किन के घर मुझको जाना पड़ा।' अब आपका मूक सन्देश समझ आ रहा है 'निज घर बिना विश्राम नाहीं, आज यह निश्चय हुआ।' अभी तक तो प्रतिदिन

पूजन का भाव विसर्जन कर मैं पाप भाव में चला गया।
ये तो की मूरखता भारी तज नीम हलाहल हाय पिया।।

पाप छोड़कर मन्दिर आता, दर्शन-पूजन करता हूँ, पर मन्दिर छोड़कर खाने-पीने, व्यापार-नौकरी, राजनीति करने चला जाता हूँ ये तो मूर्खता है। पुण्य छोड़कर पाप में जाना तो नीम छोड़कर जहर खाने जैसा हो गया। प्रभु! अब मैं मन्दिर जाकर अन्दर जाने का पुरुषार्थ करूँगा। अब मैं आपको नहीं, अपने को निहारने का, आपके गुणों के स्मरण करने का नहीं, आप जैसे अपने अनन्त गुणों के अनुभव करने का, तीर्थ या मन्दिर में रहने का नहीं, अपने स्व चतुष्टय में रहने का पुरुषार्थ करूँगा। मिल गया, मिल गया! मुझे मुक्ति सन्देश, मिल गया! सर्व-अर्थ-सिद्धि संदेश।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

9

लोकाचार की दृष्टि से पारिवारिक मर्यादा में ही युवराज के जन्मदिन के अवसर पर सभी परिजन खुश हैं। प्रारम्भ से ही युवराज के परिवार में कभी किसी के भी जन्मदिन या वैवाहिक वर्षगाँठ आदि के प्रसंग पर अनावश्यक प्रदर्शन का कार्यक्रम नहीं रखा गया। जिस आयु में बच्चे जन्मदिन मनाने के लिए केक काटने, मोमबत्ती बुझाने, चॉकलेट बाँटने की जिद करते हैं उस आयु में भी स्नेहा ने सहज और मुक्ति को जन्मदिन पर मन्दिर जाने, दान करने, सदाचारपरक नियम लेने और मित्रों के बीच मिश्री–नारियल बाँटने की ही शिक्षा दी। जब बच्चे नारियल–मिश्री लेकर स्कूल जाया करते थे तब सभी अध्यापक और उनके मित्रगण उनके नन्हें–नन्हें हाथों से भारतीय संस्कृति के अनुरूप सुस्वादु उपहार लेकर प्रसन्न हुआ करते थे।

आज के फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम के जमाने में भी युवराज के बच्चों की कोई 'रील' वीडियो, फोटो किसी को देखने नहीं मिलती जो परिवार/समाज/धर्म की मर्यादा के विरुद्ध हो ये सब स्नेहा द्वारा दिए गए संस्कारों का सुफल है।

युवराज का यह जन्मदिन षष्ठी पूर्ति जन्म दिवस है, राजकीय सेवा से भी इसी माह निवृत्ति होगी। युवराज दसलक्षण पर्व

Created by Universal Document Converter

मनाकर अपनी जन्मभूमि सिद्धपुरी पहुँचे हैं अतः स्नेहा, सहज, मुक्ति, आस्था और दामाद प्रदीप उन्हें सूचना दिये बिना ही वहीं पहुँच गए थे। सभी ने मिलकर भक्तिभाव पूर्वक विधान किया। घर आकर स्नेहा के मार्गदर्शन में आस्था और मुक्ति ने स्वादिष्ट भोजन बनाया, जिसे सभी ने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। भोजन के बाद युवराज और स्नेहा बैठक में बैठे हुए प्रसन्नतापूर्वक चर्चा कर रहे हैं तभी सहज, मुक्ति और प्रदीप बैठक में आते हैं। सभी ने चरण स्पर्श कर दोनों से आशीर्वाद लिया।

बहू आस्था ने चरण स्पर्श कर युवराज को जन्मदिन की बधाई देकर अपने आपको इस परिवार की सदस्य होने के गौरव का अनुभव करते हुए कहा "पिताजी! मैं आपके परिवार में आई, आप जैसे पिताजी-माँ मिले और सहज जैसा योग्य पति, मुक्ति जैसी प्रतिभाशाली और स्नेहिल ननद मिली; जबकि एक बड़े परिवार की उच्च शिक्षित, सुन्दर मेरी सहेली को बिल्कुल मुझसे उल्टा धर्म विरोधी, लालची, लड़ाकू परिवार मिला, तो ऐसा क्यों होता है?"

सहेली तो कहती है कि न जाने उसके भगवान उससे क्यों रूठ गये हैं? कभी कहती है, न जाने किस जन्म का बदला ले रहे हैं ? आदि। आपके आशीर्वाद से हम इस बात को तो समझ चुके हैं कि भगवान वीतरागी हैं, वे किसी को सुख-दुःख दाता

Created by Universal Document Converter

नहीं हैं, उनको कर्ता मानना तो मिथ्यात्व है। सुख-दुःख तो अपने कर्मों के कारण से मिलता है -

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।

ये बात तो आपने सिखाई है। मैं जानना चाहती हूँ मुझे सभी अनुकूलताएँ किस कर्म के कारण से मिली हैं और मेरी सहेली को प्रतिकूलताएँ किस कर्म के कारण से मिली हैं?

"वाह बेटाजी! तुम्हारी समझदारी भरी चर्चा से हमारा मन प्रसन्न हो गया। तुमने कहा हमारे आशीर्वाद से कुछ समझ गई हो, तुम्हारी समझ में हमारा ही आशीर्वाद नहीं, तुम्हारे मम्मी-पापा के संस्कार के बीज मूल कारण हैं जो हमारे द्वारा दिए जा रहे खाद पानी से अंकुरित होकर आगे बढ़ रहे हैं।

जीवन में जो भी अनुकूलताएँ, सुविधा, सम्मान, साधन मिलते हैं वे पुण्य कर्म के उदय से मिलते हैं और सभी प्रतिकूलताएँ, असुविधाएँ पापोदय से मिलती हैं, संक्षेप में ऐसा कह सकते हैं।

थोड़ा विस्तार से कहें तो सुन्दर, स्वस्थ मनुष्य शरीर, नाम कर्म की पुण्य प्रकृतियों के उदय से, बाह्य संसाधन साता वेदनीय कर्म के उदय से, लंबी आयु आयु कर्म के उदय से, जानने-भोगने, देने-लेने योग्य शक्ति अंतराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है और असुन्दर, कमजोर, टेढ़ा-मेढ़ा शरीर नाम कर्म की

Created by Universal Document Converter

ही पाप रूप प्रकृतियों, बीमारी, असुविधा, साधनहीनता असाता वेदनीय कर्म, अल्प आयु आयु कर्म के उदय से प्राप्त होती है। इस तरह आठ प्रकार के कर्मों की 148 प्रकार की कर्म प्रकृतियाँ हैं उनका विस्तार किया जाए तो असंख्यात प्रकार के कर्म हैं उनके कारण से ही सभी को अलग-अलग प्रकार का शरीर, पारिवारिक/आर्थिक परिस्थितियाँ, ज्ञान, धन, पद आदि प्राप्त होते हैं या छूटते हैं और अधिक विस्तार से जानना हो तो कभी कर्म सम्बन्धी विशेष कक्षा तुम्हारी माँ ले लेंगी वे इस विषय की विशेषज्ञ बन रही हैं।'' युवराज ने स्नेहा की प्रशंसा करते हुए कहा।

''पर जब तुमने प्रश्न किया है तो आज मैं कुछ विशेष बताना चाहता हूँ सुनोगे न ?'' युवराज ने पुलकित वदन पूछा।

मुक्ति ने सभी की ओर देखकर सब की ओर से ही कहा ''पिताजी हम सब तो आपका आशीर्वाद लेने के लिए ही आए हैं। इस अवसर पर जो विशेष चर्चा सुनने को मिलेगी, वह आपके जन्मदिन का श्रेष्ठतम प्रति उपहार होगी।''

''तो सुनो बेटा! जैन दर्शन अकर्तावादी दर्शन है, जैन दर्शन सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूप का उद्घाटक है, ये तो आप सभी जानते, मानते हो। सभी दर्शन किसी न किसी भगवान, खुदा, गॉड को इस दुनिया का बनाने वाला, सुरक्षा करने वाला, जीवन में सुखी-दुःखी करने वाला मानते हैं, परन्तु

Created by Universal Document Converter

एक मात्र जैन दर्शन इस सृष्टि/दुनिया/विश्व को सत् अहेतुक होने से अनादि-अनन्त, अकृत्रिम मानता है। जीवों को सुख-दु:ख देने वाला भगवान तो है ही नहीं, सच में तो कर्म भी जीवों को सुखी-दु:खी नहीं करता। जीव अपने अज्ञानमय परिणाम अर्थात् मोह-राग-द्वेष, परपदार्थ में इष्टानिष्ट की मान्यता के कारण ही सुखी-दु:खी होता है एवं ज्ञानमय भाव अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सच्चा सुखी होता है।''

''पर पिताजी ! आपने तो पहले कहा था कि कर्मों के कारण सुखी-दु:खी होता है और आज आप बता रहे हैं कि अपने परिणामों के कारण से सुखी-दु:खी होता है, तो फिर दोनों बातों में कौन सी बात सत्य है ?'' आस्था ने पूछा।

''बातें तो बेटा दोनों सही हैं। इसे हमें स्याद्वाद से समझना होगा। स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा/दृष्टिकोण से और वाद अर्थात् बात, कथन। जैन दर्शन के सभी कथन स्याद्वादमय ही हैं। जिनेन्द्र का शासन सर्वज्ञ का शासन है यह स्याद्वादमय, प्रशान्त, अति गम्भीर है, विश्व की समस्त विद्याओं का घर है इसलिए इसे इसे बड़ी गंभीरता से समझना आवश्यक है।

सभी जिनवचनामृत हमारे लाभ के लिए लिखे गए हैं। हमारी अज्ञानता, हमारे अंधविश्वासों, हमारी विपरीत मान्यताओं को क्रमश: छुड़ाने के लिए आचार्य भगवन्तों ने विभिन्न कथन

Created by Universal Document Converter

किए हैं। जीव अनादि से ये मानते हैं कि मेरे सुख-दुःख, यश-अपयश, लाभ-हानि का कारण परिवार का कोई सदस्य है, ग्राहक या दुकानदार है, मालिक या नौकर है, सास या बहू है, पिता या पुत्र है, धन अथवा निर्धनता है इस मिथ्या मान्यता का निराकरण करने के लिए आचार्य भगवन्तों ने अर्थात् परपदार्थों पर से दृष्टि हटाकर, दूसरे जीवों को दोष देने की मान्यता छुड़ाने के लिए कहा कि जीव अन्य किसी के कारण सुखी-दुःखी नहीं होता, न ही हम किसी को सुखी-दुःखी कर सकते हैं, न जिला सकते हैं, न मार सकते हैं; प्रत्येक जीव अपने कर्म के उदय से ही जन्म-मरण करता है और जीवन जीते हुए सुखी-दुःखी, रोजगार-बेरोजगार, धनवान-निर्धन बनता है, सम्मान-अपमान, पुरस्कार-तिरस्कार प्राप्त करता है।''

''अच्छा! तो दूसरों को दोष न देकर हम अपने कर्मों को ही अपने सुख-दुःख का कारण माने इसलिए आचार्यों ने यह कहा है कि हमें अपने कर्मों का ही फल प्राप्त होता है।'' प्रदीप ने पूछा।

''जी हाँ! बिल्कुल सही पकड़े हो, यही बात है; क्योंकि हम सभी की दृष्टि केवल दूसरों पर ही जाती है। रिश्ते बनने-बिगड़ने, आने-जाने, गिरने-उठने हर कार्य के लिए हम किसी दूसरे को ही दोष देते हैं इसलिए आचार्य भगवन् ने अपने ही कर्मों का फल हमें मिलता है - ऐसा कहा है।''

Created by Universal Document Converter

"तो फिर आज आप जो ये कह रहे हैं कि अपने परिणामों का फल मिलता है, उसकी क्या अपेक्षा है?" आस्था ने पूछा।

"देखो बेटा! जब अन्य पर से दृष्टि हटाकर कर्मों को सुख-दुःख का कर्ता कहा तो हमारी दृष्टि कर्मों पर ही अटक कर रह गई। यदि हमें दुःख हुआ तो क्या करें असाता वेदनीय का उदय है, नींद आई तो क्या करें दर्शनावरण कर्म का उदय है, अपनी असावधानी से कोई मर गया तो क्या करें उसकी आयु कर्म पूरा हो गया था - इस तरह हर कार्य में हम कर्म को ही कारण मानने लगे, अपनी भूलों पर हमारी दृष्टि ही नहीं गई इसलिए आचार्य देव ने कहा कर्म तो जड़ है, अचेतन है उन्हें नहीं पता कि किसे क्या फल देना है, न उनकी कोई शत्रुता है कि वे हमारे पीछे पड़ें और न हमसे मित्रता है कि वे हमें लाभ दें। जैसे कि कर्मों को तुमसे कोई मित्रता नहीं थी कि इतना अच्छा परिवार दे दिया, तुम्हारी सहेली से कर्मों को कोई शत्रुता नहीं है जो उसे लड़ाकू सास दी है, परिवार वाले दुःखी करते हैं। सच बात तो यह है कि पूर्व जन्म में हमने जैसे-जैसे भाव/विचार किये वैसे-वैसे कर्मों का बंधन हुआ। हमने दूसरों के ज्ञान में अंतराय किया, ज्ञान और ज्ञानियों का अपमान किया, ज्ञानियों को दोष लगाया, गुरुजनों का अपमान किया, प्राप्त ज्ञान का अहंकार किया उसके फल में ऐसे ज्ञानावरण कर्म का बंधन हुआ कि जिसके फल में वर्तमान में हमें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही है।"

Created by Universal Document Converter

हमने किसी को पूर्व में दुःखी किया, परेशान किया, लड़ाई करवाई, अपमान कराया, रोजगार छीन लिया, बेघर कर दिया, पदच्युत कर दिया, अच्छा काम करने नहीं दिया तो इन परिणामों के फल में वर्तमान में हमें ऐसा फल मिल रहा है कि हम ये सभी काम नहीं कर पा रहे हैं और दूसरी ओर जिन्होंने ज्ञान और ज्ञानियों का सम्मान किया, ज्ञान का प्रचार हो, घर-घर तत्त्व चर्चा हो ऐसी भावनाएँ भायीं उनको बहुत जल्दी समझ में आ रहा है, जिन्होंने भूखे को भोजन दिया, प्यासे को पानी पिलाया, बीमार को योग्य औषधि दी, दूसरों के गुणों की प्रशंसा की, दूसरों के अच्छे कार्यों का अभिनन्दन किया, किसी के परिवार में कलह नहीं कराई, मित्रता कराई, वात्सल्य पूर्वक रहे, सभी को वात्सल्य पूर्वक रहने का उपदेश दिया उनको इतना अच्छा परिवार मिल रहा है कि वे जहाँ जाते हैं वहीं सुखी रहते हैं, जहाँ पहुँचते हैं वहीं सम्मान मिलता है, जो पढ़ते हैं वही याद हो जाता है जो खाते हैं वही पच जाता है, इस तरह बेटा! हमने तो कुछ उदाहरण देकर बात की है, आप प्रत्येक घटना पर लगाना। जो हमारे सामने फल आ रहा है वह हमारे परिणामों की फोटोकॉपी है। जितने रुपए की एफडी कराई थी वही ब्याज सहित प्राप्त हो रहा है। अच्छा किया था अच्छा मिल रहा है, बुरा किया था बुरा मिल रहा है हमारे बचपन में एक गाना चलता था 'बुरे काम का बुरा नतीजा, हाँ भाई चाचा, हाँ भाई भतीजा।' तो हमें अपने हर

Created by Universal Document Converter

काम/भाव/परिणाम का ही फल मिलता है कर्म तो निमित्त मात्र हैं। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथ में लिखा है-

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमेन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन।।

जीव के द्वारा किए गए मोह-राग-द्वेष भावों के निमित्त से पुद्गल स्वयमेव कर्म रूप परिणमित होते हैं।

इस तरह आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जीव के परिणाम स्वयं अपनी योग्यता से होते हैं, उनके निमित्त से नवीन कर्मों का आस्रव-बंध भी स्वयं ही होता है, कार्मण वर्गणाएँ स्वयमेव कर्म रूप परिणमित होती हैं। इस प्रकार पूर्व कर्म का उदय जीव के वर्तमान कालीन भावों में निमित्त होता है और जीव के वर्तमान कालीन भाव आगामी कर्मों के आस्रव-बंध में निमित्त होते हैं परन्तु जीव और पुद्गलों का परिणमन स्वयं अपनी योग्यता से होता है, कोई किसी का कर्ता नहीं है।

इस संबंध में एक और विशेष बात सभी ध्यान से सुनना कि यदि हम कर्मों को ही अपने सुख-दुःख का कर्ता और जीव को कर्म बंधन का कर्ता मानेंगे तो बड़ा भारी दोष आता है। जिस तरह आस्था की सहेली मानती है और देश के ज्यादातर लोग मानते हैं कि हमें सुखी-दुःखी करने वाला, मारने-बचाने वाला, जन्म देने वाला कोई भगवान, गॉड, खुदा है इसी तरह यदि हमने माना

Created by Universal Document Converter

कि हमें सुखी-दुःखी करने वाला, मारने-जिलाने वाला कर्म है तो दोनों मान्यताओं में सच में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। वे भगवान को कर्ता मानते हैं, हम कर्म को कर्ता मानेंगे। वे भगवान को रक्षक मानते हैं, हम कर्म को रक्षक मानने लगे। इस तरह तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता होने का प्रसंग आएगा। जबकि जैन दर्शन अकर्तावादी दर्शन है जैन दर्शन कहता है -

जिसने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन हैं।।

सहज ने कहा "पापाजी! आज तो आपने द्रव्यों की स्वतंत्रता की बहुत सुन्दर चर्चा की है। ये सुनकर सच में हमें आनन्द आ गया।"

"बेटा जिनवचनामृत आनन्दमय हैं। जीव और कर्म दोनों में अत्यन्ताभाव है वे हमें सुखी-दुःखी कैसे कर सकते हैं? सच में तो हमारा राग अपनी योग्यता से हो रहा है और वीतरागता होगी तो वह भी अपनी योग्यता से होगी। कोई भगवान या कोई कर्म न तो इनको रोक सकता है और न प्रकट कर सकता है, फिर भी जब राग होता है तब कर्म का उदय उसमें निमित्त अवश्य होता है इसलिए व्यवहार से राग-द्वेष का कर्ता या सुख-दुःख का कर्ता कर्म को कहा जाता है और जब वीतरागता होती है तब कर्म का अभाव नियम से होता है, इस निमित्त-नैमित्तिक संबंध को देखकर - ऐसा भी कहा जाता है कि कर्म का क्षय होने से

Created by Universal Document Converter

वीतरागता प्रकट हुई, ज्ञानावरण कर्म का नाश होने पर केवल ज्ञान हुआ। सच में तो जैन दर्शन कहता है कि न तो जीव शुद्ध पर्याय को प्रकट करता है और न कर्म।

शुद्ध पर्याय स्वयं की योग्यता से होती है, यदि जीव अपनी शुद्ध पर्याय का कर्ता हो तो अनादि काल से अभी तक क्यों नहीं की और यदि कर्म रोकने वाले हों तो उस समय भी क्यों हुई ? जब वीतरागता, सर्वज्ञता, अनन्त सुख प्रकट होना हो तब अपनी योग्यता से प्रकट होते हैं। प्रकट होने पर निश्चय से कहा जाता है कि जीव ने पुरुषार्थ किया और शुद्धता प्रकट की और व्यवहार से कहा जाता है कर्म का क्षय हुआ इसलिए शुद्धता प्रकट हुई। इसी तरह राग-द्वेष अशुद्धता पर भी समझा जा सकता है।''

''पापाजी मुझे वस्तुस्वातंत्र्य, पर्याय की स्वतंत्रता की यह गंभीर चर्चा कुछ-कुछ समझ में आ रही है । इतना तो पूरा समझ में आ गया कि यदि कर्मों को मैं अपनी सुख-दु:खरूपी पर्याय का कर्ता कहूँगी तो व्यवहार नय है और यदि मैं कर्ता मानूँगी तो मिथ्यात्व है, अज्ञानता है। आपके आशीर्वाद से हमें भी हमारी जीवन यात्रा की विकार विजय यात्रा करने के लिए पाथेय प्राप्त होता रहेगा और हम आगे बढ़ते रहेंगे - ऐसा विश्वास है।'' पिताजी ! आप सदा स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें हमारे ऊपर आशीर्वाद बनाए रक्खें और मुस्कुराते रहें, मुस्कुराने में कारण बनते रहें; यही हमारी मंगल कामना है।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

10

पण्डित भोलाराम शास्त्री अपने सुपुत्र के साथ शिवपुरी में रह रहे थे। वर्षों बाद वे सिद्धपुरी आए हुए हैं, यह जानकर युवराज के परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। परिवार में केवल युवराज ही ऐसा था जो पण्डित भोलाराम शास्त्री से बचपन में मिला था, उनके द्वारा पाठशाला में बहुत कुछ सीखा भी था। परिवार के अन्य सदस्य उनसे मिले नहीं थे, परन्तु ऐसा कोई नहीं था जो भोलारामजी के अन्तर–बाह्य व्यक्तित्व से परिचित न हो अत: सभी को उनसे मिलने की उत्कण्ठा थी।

रात्रि में पूरा परिवार पण्डित भोलारामजी के पास पहुँचा। पण्डितजी ने युवराज को बचपन में देखा था और उसके द्वारा जो तत्त्व प्रभावना के कार्य किये जा रहे थे, उन सबको सुनकर प्रमुदित होते थे कि चलो मेरे गाँव का कोई युवक इतना उत्तम कार्य कर रहा है।

सभी ने पण्डितजी को सादर प्रणाम किया और उनकी कुशलता पूछ कर उनके सामने ही चटाई पर बैठने लगे तो पण्डितजी बोले "अरे भाई! वहाँ नीचे कहाँ बैठ रहे हो, आप सभी विद्वान हो, जिनवाणी के रसिक व प्रचारक हो, आप भी मेरी तरह जिनवाणी माँ की संतान हो, तो आप सब तो मेरे छोटे

Created by Universal Document Converter

भाई-बहन ही हुए; क्योंकि अपनी माँ एक हुई। आप नीचे बैठकर और मुझे ऊपर बैठा कर बुड्ढा मत बनाओ। आओ सभी ऊपर तखत पर ही बैठो।'' उनके स्नेह भरे आग्रह को स्वीकार कर सभी उनके सामने ही बिछे हुए तखत पर बैठ गए।

''पण्डितजी साहब आपके प्रवचनों व आपकी जीवन शैली के बारे में हम सभी कल्याणपुर में सुनते रहते हैं। आपकी उन्मुक्त हँसी, मिलन सारिता, युवा वर्ग के प्रति लगाव के बारे में सुनकर न केवल मेरे बल्कि हम सभी के मन में आपसे मिलने की तीव्र भावना थी। चिर प्रतीक्षित भावना आज सिद्धपुर में सिद्ध हुई है। युवराज वर्षों बाद यहाँ जन्मभूमि पर आए हैं और आप भी वर्षों बाद आए हैं तो यह हमारा सौभाग्य ही है जो आपके दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ।'' स्नेहा ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी बात कही।

''अरे बेटा! हम भी तुम सब के बारे में सुनते रहते हैं, किस तरह तुम दोनों ने दो-दो जगह संस्थान प्रारम्भ कर दिए हैं, तीसरे की तैयारी चल रही है। सहज-मुक्ति भी उच्च शिक्षित होकर तत्त्व प्रेम रखते हैं एवं ईमानदारी के साथ अपना काम करते हैं। आपके परिवार के नए सदस्य प्रदीपजी भी तत्त्व रसिक ही हैं। युवराज ने बहुत सुन्दर बहू और दामाद खोजे हैं।

देखो बेटा! धन पद तो पुण्य उदय से मिलते हैं और धर्म पुरुषार्थ से होता है। यह जीवन धर्म समझने/समझाने और प्रकट

Created by Universal Document Converter

करने में लगाना ही सच्चा पुरुषार्थ है। धन-पद तो जो भी मिलना होगा मिलेगा ही, बाह्य विभूतियाँ तो धर्मात्मा की चरणों में लोटती हैं, इसलिए अपनी बुद्धि, श्रम, समय का उपयोग तत्त्व निर्णय में ही करना।'' भोलारामजी ने संबोधित किया।

''पण्डितजी किसी भी व्यक्ति को धर्म प्रकट करना हो तो आप सबसे पहले उस जीव के जीवन में क्या आवश्यक समझते हैं ?'' प्रदीप ने पूछा।

''किसी भी जीव के जीवन में सबसे पहले नैतिकता आवश्यक है। नैतिकता के बिना कदाचित् धन-पद, सम्मान मिल जाये, पुण्योदय हो तो लोग प्रशंसा करने लग जाएँ, परन्तु धर्म प्रकट नहीं हो सकता।'' गाँधीजी ने कहा है कि ''नैतिक व्यक्ति धार्मिक हो यह आवश्यक नहीं है पर धार्मिक वही हो सकता है जो नैतिक होगा।'' हम जब देशभर के समाचार देखते हैं, समाज की चर्चा सुनते हैं तो लगने लगता है कि हम सब किधर जा रहे हैं ? चारों ओर सड़कों, मकान, रेलों, फैक्ट्री, बहु मंजिला इमारतों, मोबाइल, इन्टरनेट, खानपान सब में उन्नति हो रही है पर नैतिकता में अवनति हो रही है।

देश के बड़े-बड़े नेता, डॉक्टर, इंजीनियर, कलेक्टर, एस.पी. से लेकर पटवारी तक धन पाने के लिए मिलावट, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी कर रहे हैं, एक तरह से कहें तो देश की जनता का

Created by Universal Document Converter

धन व विश्वास लूट रहे हैं। समय पर अपने काम नहीं कर रहे हैं, अधिकारों का दुरुपयोग कर रहे हैं, अब ऐसे व्यक्ति दान भी दें तो उस दान की क्या कीमत ?

"मैंने तो धार्मिक संस्थाओं के बारे में भी सुना है कि अनेक स्थानों पर लोग अनैतिक दृष्टि से पद पर बैठे हुए हैं। संस्था में पूरा वेतन लेते हैं, पर जिम्मेदारी नहीं निभाते हैं। अन्य विद्वानों का तिरस्कार करते हैं। अधिकारी बनकर अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं। संस्था को अपनी सम्पत्ति समझकर वहाँ की सुविधाओं का अनधिकृत उपयोग करते हैं, ये सब अनैतिकता है। मेरी दृष्टि में ऐसे लोगों के जीवन में धर्म नहीं आ सकता वे धर्म के प्रचारक बनकर विक्रेता बन रहे हैं, धर्मात्मा नहीं।"

"पण्डितजी साहब! मैंने सुना है कि आप आध्यात्मिक चर्चा करते हुए भी पारिवारिक समरसता, सेवा, योग्य व्यवहार आदि के सम्बन्ध में सभी को प्रेरित करते हैं – ऐसा क्यों ?" मुक्ति ने पूछा।

"बेटा! तुमने सही कहा कि मैं ऐसा करता हूँ। लोगों का मानना है कि आप तो समस्त परद्रव्य, परभावों से भिन्न शुद्ध आत्मा की बात करो और मजे से रहो। वक्ता को परिवार, समाज से क्या लेना-देना ? पर भाई! जब हम परिवार, समाज के बीच रहकर लाभ ले रहे हैं तो फिर एक योग्य व्यक्ति का अपने माता-

Created by Universal Document Converter

पिता, सास-ससुर के प्रति क्या कर्तव्य है, ये जानना-समझना नहीं चाहिए? छोटे-बड़ों के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए यह नहीं समझना चाहिए? मेरी दृष्टि में तो अवश्य समझना चाहिए और योग्य व्यवहार करना चाहिए।

जिसे अपने प्रत्यक्ष उपकारी माता-पिता, सास-ससुर की सेवा का भाव नहीं आता, वह परोक्ष उपकारी देव-शास्त्र-गुरु का क्या सम्मान करेगा? जिसे सास-ससुर, ननद, देवरानी, जेठानी, भाई में गरीबी-अमीरी या पद के कारण भेद दिखता है वह तो 24 तीर्थंकरों में भी रंग, आयु, श्रोता, चक्रवर्ती आदि देखकर भेदभाव ही करेगा। इसीलिए जिसे समता भाव/वीतरागता प्रकट करना है उसे सबसे पहले अपने प्रत्यक्ष उपकारियों के प्रति बहुमान आना चाहिए। हम सब शुद्धात्मा हैं की बातें करें या सुने और घर जाकर माता-पिता शुद्धात्मा दिखें नहीं, घर के सदस्य भावी सिद्ध न लगकर शत्रु दिखें, उनमें क्लेश करें तो फिर साँप, बिच्छू, चूहा, बिल्ली और पेड़ पौधों में भावी सिद्ध कहाँ से दिखेंगे?''

''पण्डितजी साहब आजकल सभी स्वतन्त्र रहने लगे हैं, पति-पत्नी नौकरी करने लगे अतः लोगों के पास परिजनों की सेवा करने, स्वाध्याय-पूजन करने का समय ही नहीं रह गया है।'' स्नेहा ने कहा।

Created by Universal Document Converter

''यह भी नई पीढ़ी का दुर्भाग्य है कि वे स्वतन्त्रता की बात करते हैं और विषय भोगों के परतन्त्र हो रहे हैं। स्वतन्त्रता के नाम पर परिवार से भागते हैं और मकान, नौकरी, पत्नी, बच्चे और उनकी फरमाइशों के परतन्त्र हो जाते हैं। अब पहले जैसे बड़े परिवार तो हैं नहीं, पर यदि एक बेटा बहू या दो भाइयों का परिवार है तो उन्हें तो साथ रहना ही चाहिए।

घर परिवार में बड़े रहते हैं तो कुछ न कुछ अनुशासन, मर्यादा बनी रहती है। प्रमाद नहीं होता। बेटी-बहू का शील सुरक्षित रहता है। सहज ही बड़ों के द्वारा अनेक सुशिक्षा एवं संस्कार मिल जाते हैं। सभी के साथ रहने से भोजन आदि में सहयोग मिल जाता है। सभी बच्चों का पालन-पोषण सहजता से हो जाता है। सभी क्रमशः मन्दिर, स्वाध्याय, शिविर में जाते रहते हैं।

सामूहिक परिवार तभी बना रह सकता है जब हृदय में विवेक और उदारता हो, वाणी में मधुरता हो, सहनशीलता हो, आक्षेप-कटाक्ष आदि न हों, सहयोग की वात्सल्य पूर्ण भावना हो, समस्या का समाधान शान्तिपूर्वक निकाला जाए, त्याग और समर्पण का भाव रहे, पक्षपात और मिथ्या स्वार्थ न हो। ये सब होना आसान नहीं है पर असम्भव भी नहीं है। जहाँ सम्भव होगा वह घर स्वर्ग होगा और रहने वाले स्वर्गवासी।'' पण्डितजी ने उन्मुक्त ठहाके के साथ अपनी बात पूर्ण की।

Created by Universal Document Converter

"आज आपके द्वारा परिवार हेतु प्रायोगिक दिशा-निर्देश प्राप्त हो रहे हैं। आपके विचार आगमसम्मत तो हैं ही साथ ही आधुनिक समय के अनुरूप भी होने से युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। मेरी एक जिज्ञासा है कि परिवार की महिलाओं को नौकरी करना चाहिए या नहीं - इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?" सहज ने पूछा।

"वाह बेटा! तुम मुझे गाँव का गँवार आदमी समझ कर मेरी ही बेटी-बहुओं को दुश्मन बना देना चाहते हो। मुझे जो गरमा-गरम भोजन मिलता है वह भी बन्द हो जाएगा। मैं कहूँ कि करना चाहिए तो सासें नाराज और कहूँ कि नहीं करना चाहिए तो बेटियाँ नाराज हो जाएँगी। वैसे तो सबका मानना है 'सुनना सबकी, करना मन की' तो मेरी भी मानने, सुनने वाला कौन है? फिर भी पूछा है तो अपने विचार बताता हूँ।

स्त्री का गौरव सफल ग्रहणी एवं सुयोग्य माता बनने में है। पुरुषों से समानता कर सर्विस, व्यापार और राजनीति में काम करने में नहीं है। मजबूरी में आजीविका करना पड़े तो ऐसी निर्दोष आजीविका करें, जिसमें शील एवं अन्य मर्यादाओं का पालन हो सके। सेवा, विनय, लज्जा, शील ही महिला का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

महिलाओं के सर्विस या व्यापार करने के सम्बन्ध में तो मेरे

Created by Universal Document Converter

उक्त विचार हैं ही पर मैं तो सभी युवा वर्ग से कह रहा हूँ कि ऐसी सर्विस न करें जिसमें नैतिकता का हनन हो, कुशील, हिंसादि का पोषण हो। अपने सामान्य नियमों का भी पालन न हो पाए, मन खिन्न तथा बोझिल रहे। पराधीनता एवं दीनता लगे। सामर्थ्य से अधिक कार्य भार हो जिससे स्वास्थ्य बिगड़े या पारिवारिक व्यवस्थाएँ बिगड़ें, रिश्वत लेकर अनैतिक काम न करें। ध्यान रखें कि नौकरी, पद, रुपया अपने लिए है; हम उनके लिए नहीं हैं। मेरा जीवन किसी एक नौकरी या पद के लिए नहीं है कि नौकरी या पद नहीं मिला तो जीवन समाप्त। सारे संसाधन हमारी धर्म आराधना में कारण बने इस तरह संयोजन करना चाहिए।''

''पण्डितजी साहब मुझे तत्त्व प्रचार के लिए कुछ न कुछ करने की भावनायें होती रहती हैं। जबकि मित्र समझाते रहते हैं कि समाज के कार्यों में उलझ कर अपना समय क्यों बर्बाद करते हो। यदि करना नहीं चाहता हूँ तो निरन्तर स्वाध्याय/चिन्तन में मन लगता नहीं है अतः अनेक समस्याएँ आने पर भी मन करता है कि कुछ न कुछ करूँ। समाज में फैलती विकृतियों और धर्म के प्रति बढ़ती अरुचि देखकर लगने लगता है कि यदि संस्कृति के प्रचार-प्रसार में हम कुछ कर सकते हैं तो यह तो समाज का ऋण उतारना ही होगा, क्योंकि समाज ने मेरे लिए भी बहुत कुछ

Created by Universal Document Converter

किया है। इस छोटी सी जगह पर मेरा जन्म हुआ यदि समाज ने मुझे अवसर न दिए होते तो मैं आज इस योग्य नहीं होता, इसलिए क्यों न युवाओं के प्रति जो कि अपने ही परिवार के सदस्य हैं, अपना दायित्व निर्वाह करते हुए कुछ किया जाए। ये सभी कार्य करते हुए क्या सावधानी रखी जाएँ कृपया बताइए।" युवराज ने पूछा।

"भाई युवराज! तुम तो स्वयं प्रवचनकार हो, अच्छे स्वाध्यायी हो, अतः सब समझते भी हो कि गुणस्थान प्रमाण राग आए बिना नहीं रहता और हमें अपनी भूमिकानुसार कर्तव्यों का अवश्य पालन करना चाहिए। अधिकतर लोग परिवार समाज में अपने अधिकारों को तो चाहते हैं, परन्तु कर्तव्यों से भागते हैं। तुमने बिल्कुल सही कहा यदि समाज में संस्थान न खुले होते, पण्डित आदेशकुमारजी जैसे विद्वान सक्रिय न होते तो तुम्हारे जैसे हजारों लोगों को तत्त्वज्ञान की गहराइयों में कौन उतारता? आज जितने संस्थान दिख रहे हैं ये सब उन्हीं की देन है। इसलिए देव-शास्त्र-गुरु, समाज, परिवार के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए निष्पक्ष और निरपेक्ष रहकर जो कुछ करने का भाव आता है वह अवश्य करना चाहिए। जो स्वाध्याय करके सत्य-असत्य, हित-अहित, कर्तव्य-अकर्तव्य जानने लगते हैं वे सामाजिक कार्यों से दूर भागते हैं और जो इस विवेक से रहित

Created by Universal Document Converter

होते हैं वे संस्थाओं का संचालन करते हैं, फलस्वरूप अनेक विकृतियाँ आती हैं, इसलिए स्वाध्याय प्रेमियों को भी तत्त्व प्रचार-प्रसार वाली संस्थाओं में तन-मन-धन, कृत-कारित-अनुमोदना से जिम्मेदारी पूर्वक जुड़ना चाहिए।

कार्यकर्ताओं/विद्वानों एवं दानदाताओं के प्रति हृदय में सम्मान भाव होना चाहिए। दिक्कत तब आती है जब दानदाता समझते हैं कि मेरे दान के ही कारण संस्था चल रही है अथवा विद्वान समझते हैं कि मेरे मार्गदर्शन से ही यह कार्य आगे बढ़ रहा है या कार्यकर्ता समझते हैं कि मेरे बिना यहाँ का पत्ता भी नहीं हिल सकता, जबकि इन सभी के सुमेल/संयोजन से ही कार्य होता है, सभी का अपना-अपना योगदान है। इसलिए तुम सबका योगदान स्वीकार करते हुए, सभी को श्रेय देते हुए कार्य करना। कभी भी किसी कार्यकर्ता को जो कि नींव से जुड़ा हुआ है उसे छोटी-मोटी बात को लेकर अपने से दूर नहीं करना। ये तो हम सभी जानते हैं कि हाथ की पाँचों अंगुलियाँ बराबर नहीं हैं, तो सभी सहयोगी भी एक जैसे नहीं हो सकते, पर सभी मिलकर ही संगठन बनता है।

तुम तो विद्वान हो समाज को तुमसे अपेक्षाएँ हैं कि तुम काम करो, सबको साथ लेकर चलो। यदि कहीं लगे कि किसी को तुम्हारे सहयोग या मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है तो वहाँ से

Created by Universal Document Converter

चुपचाप हट जाना, पर नींव से जुड़े व्यक्ति को हटाना मत, पद या स्थान से चिपकने की भावना मत रखना। काम करो और आगे बढ़ो। तुम पद के लिए नहीं हो, आवश्यकतानुसार पद तुम्हारा इन्तजार करेंगे।

एक बात और ध्यान रखना गलती तो किसी से भी हो सकती है, काम करने वालों में अहंकार होना नहीं चाहिए, परन्तु मिथ्यात्व अवस्था है अत: किसी को अहंकार भी हो सकता है तो तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिए कि उनका सम्मान रखते हुए, उनकी भावनाओं की पूर्ति करते हुए उन्हें संस्थान से जोड़े रखो। योग्य कार्यकर्ताओं, विद्वानों का मिलना बहुत दुर्लभ है। डाली को पेड़ से काटना आसान है, पर उसे वापस जोड़ना असंभव है। संस्थान का प्रारम्भ करना बहुत कठिन है, चलाना तो आसान है, इसलिए जिन्होंने प्रारम्भ में किसी भी रूप में अपना योगदान दिया है, उनकी उस समय की भावना व सहयोग को याद रखते हुए उनको जोड़कर रखना। विद्वानों व कार्यकर्ताओं को पर्याप्त सुविधाएँ देना, कंजूसी मत करना अन्यथा योग्य समर्पित कार्यकर्ता नहीं मिलेंगे।

तुम्हारे में इतनी प्रतिभा है कि जहाँ जाओगे वहाँ एक नया संस्थान खड़ा कर लोगे और यदि संस्थान खड़ा न भी हो तो तुम अपने लेखन, कक्षा और प्रवचनों से सभी के मध्य तत्त्व प्रचार

Created by Universal Document Converter

कर सकते हो। तत्त्व प्रचार की तीव्र भावना होते हुए भी आत्मानुभूति ही अपना मुख्य लक्ष्य बनाकर रखना यदि मुख्य लक्ष्य से भ्रष्ट होकर केवल प्रचार करते रहे तो यह बहुत बड़ी हार हो जाएगी।''

''पण्डितजी साहब मन्दिरों, संस्थाओं में प्राय विसंवाद होते रहते हैं, अनेक संस्थाओं में तो पद प्राप्ति के लिए न्यायालय तक चले जाते हैं । चुनाव इस तरह होते हैं जैसे कि किसी राजनीतिक पद के लिए हो रहे हों इसका क्या कारण है?'' युवराज ने पूछा।

''जहाँ पर अन्याय, अनीति का पैसा लगता है, नाम-पद की अभिलाषा रहती है, बिना विवेक दान का पैसा खर्च किया जाता है वहाँ पर कुछ न कुछ कलह होती ही रहती है।

आज सर्वत्र धन की प्रधानता हो गई है। सच में तो मैं तो ठहरा गाँव का गँवार आदमी, अधिक जानता नहीं हूँ, पर अनेक बार तो समाज द्वारा आयोजित धार्मिक कार्यक्रम बाजार/मण्डी जैसे लगने लगते हैं। विद्वज्जन हों या पदाधिकारी सब मानो ग्राहक खोजने खड़े हैं। कैसे भी पैसा मिलना चाहिए। प्रतिमा, वेदी, जिनवाणी, चरण उन्हें केवल माल दिखता है और जब श्रेष्ठी इन्हीं पर पैसा बरसाता है तो कमाल दिखता है। विद्यालय खोलना है, चलाना है, अस्पताल बनाना है, अतिथि भवन बनाना

Created by Universal Document Converter

है तो बस पंचकल्याणक करवा लो और बोलियाँ लगाकर मालामाल हो जाओ, सब काम हो जाएगा।

जो न पहले मन्दिर आते थे न आगे आएँगे वे भगवान विराजमान करते हैं। जिन्होंने ग्रन्थ के नाम भी नहीं सुने पढ़ने की तो बात ही दूर है, वे जिनवाणी विराजमान करने की बोली लगाते हैं। अनेक व्यसनों के धारक इन्द्र-इन्द्राणी बन जाते हैं। देश-समाज को नुकसान पहुँचाने वाले व्यापार करके कमाए हुए धन से मन्दिर बनवाते हैं। अरे क्या कहें प्रतिष्ठाचार्य/विधानाचार्य भी धन की अभिलाषा में ही क्रियाएँ कराते/छोड़ते जाते हैं तब फिर कैसे आशा की जाए कि निर्दोष प्रभावना होगी।

एक ओर जहाँ श्रेष्ठीवर्ग अपने परिजन के व्यामोह में फँसकर पद नहीं छोड़ना चाहते, राजा का बेटा राजा की धारणा बनाये हुए हैं, उससे भी नयी पीढ़ी में आक्रोश होता है और विवाद होता है।

अधिक क्या कहा जाए, जहाँ जो हो रहा है, वही होने योग्य होगा इसलिए हो रहा है यह जानकर ही समता भाव धारण करना चाहिए। अपनी कोई कमी या गलती हमें आसानी से समझ नहीं आती इसलिए यदि कोई बताए तो उनका सम्मान रखते हुए स्वीकार करना और यदि कोई ना बताए तो भी समय-समय पर अपना आंकलन करना और कमी लगे तो उसे

Created by Universal Document Converter

सुधारना। सफलता में अहंकार न आ जाए इसके लिए सावधान रहना, बस इतना ही काफी है।

तुम सब स्वस्थ, मस्त रहकर जहाँ भी रहो जिनवचन ही कहो और जिनवचन ही सुनो तो निरन्तराय ही कार्य चल रहा है।"

"वाह पण्डितजी! आपने सुन्दर तत्त्व चर्चा से हम सभी को निर्भार कर दिया है। बस अन्त में मैं ये जानना चाहती हूँ कि मुझे इस शेष जीवन में क्या करना चाहिए?" स्नेहा ने विनम्रता से पूछा।

"हम सभी को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक ही कार्य करने योग्य है, भेदविज्ञान; क्योंकि जितने भी जीव अभी तक सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान से ही हुए हैं और जो बँधे हुए हैं वे भेदविज्ञान के अभाव में बँधे हुए हैं। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने कहा है -

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।

बच्चे-बूढ़े सबके लिए निरन्तर भेदविज्ञान ही करने योग्य है। न्याय-अन्याय, नीति-अनीति, भक्ष्य-अभक्ष्य, पूज्य-अपूज्य, कर्तव्य-अकर्तव्य में भेदविज्ञान करते हुए स्व-पर के भेद विज्ञान तक पहुँचना चाहिए। मैं द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से भिन्न, अपने अनन्त गुणों से अभिन्न ज्ञानानन्दमयी चैतन्य चक्रवर्ती हूँ। पर्याय मात्र का लक्ष्य छोड़कर, अखण्ड, अनादि-अनन्त, ध्रुव

Created by Universal Document Converter

चैतन्य तत्त्व में ही अपनापन करना, अजर-अमर, अजन्मे, कुल-गोत्र, परिजन-पुरजन से भिन्न मैं चैतन्य तत्त्व हूँ ऐसी दृढ़ श्रद्धा करना। जो बूढ़ा नहीं होता, रोगी नहीं होता, कमजोर नहीं होता, जो रागी भी नहीं है, वीतरागी भी नहीं है, सदा शाश्वत एक रूप रहने वाला अरागी है वही ज्ञायक भाव मैं हूँ, उसी के निर्णय एवं स्थिरता का पुरुषार्थ ही सम्यक् पुरुषार्थ है। यही मेरी ओर से तुम्हारी सुखमय यात्रा हेतु है पाथेय।'' पण्डितजी ने दोनों हाथ उठाकर मुस्कुराते हुए सभी को आशीर्वाद दिया।

सभी ने पण्डितजी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए चरण वन्दन कर विदा ली।

❀❀❀

यह है मेरा राजभवन

समकित नींव भरी है इसकी, नहीं हिलाये यह हिलती।
सन्मति भित्ति महा मनोहर, कहीं और जो न मिलती।।
सम्यक्चारित का आच्छादन, भवन हुआ है मन-भावन।।1।।
क्षमा-मार्दव-आर्जव आदि, पुष्प खिले जहँ उपवन में।
समता-शुचिता और सरलता, महक रही है चहुँ दिशि में।।
प्रभुता-विभुता छाया देते, लगता हर क्षण है सावन।।2।।
गुण अनन्त का स्वामी प्रियतम, शक्ति-धर्म अनंत बिखरे।
पर्यायें जन्में अरु लय हों, प्रियतम न जन्मे न कभी मरे।।
ज्ञाता-दृष्टा मेरा प्रियतम, सदा रहे वह 'राजभवन'।।3।।

Created by Universal Document Converter

लेखक द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य

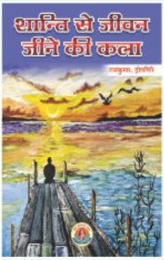

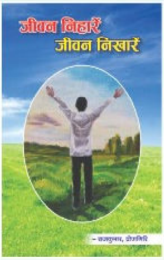

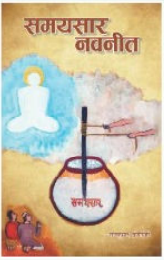

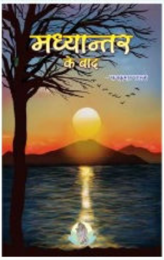

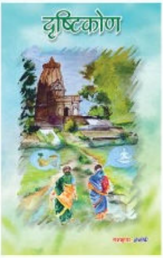

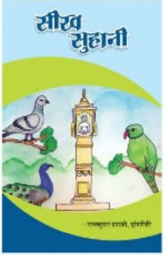

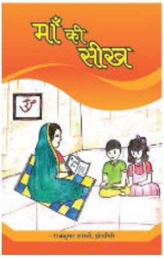

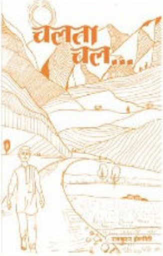

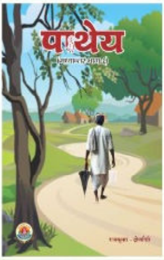

लेखक का अप्रकाशित साहित्य

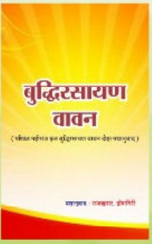

Created by Universal Document Converter

Created by Universal Document Converter